मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 44 ● वर्ष 5 ● अंक 6–7 ● अगस्त–सितम्बर 2015 (संयुक्तांक) ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

डिलीवरी मज़दूरों के निर्मम शोषण पर टिका है ई-कॉमर्स का कारोबार 5

समाजवादी सोवियत संघ ने वेश्यावृत्ति का ख़ात्मा कैसे किया? 8

धागों में उलझी ज़िन्दगियाँ कपड़ा उद्योग के मज़दूरों के बीच हादसों और असन्तोष की दास्तान 14

गहराते आर्थिक संकट के बीच मेहनतकश अवाम की लूट और तेज़ करने के इन्तज़ाम में जुटी सरकार और संघ परिवार के संगठन लोगों को बाँटने में जुट गये हैं

अच्छे दिनों का भ्रम छोड़ो, एकजुट हो, सामने खड़ी चुनौतियों का मुकाबला करने की तैयारी करो!

सम्पादक मण्डल

पिछले महीने अपनी पूरी सरकार के साथ नागपुर में आर.एस.एस. के दरबार में मत्था टेककर नरेन्द्र मोदी ने भोले लोगों के लिए भी सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी कि यह सरकार वास्तव में राष्ट्रीय स्वयंवक संघ के एजेण्डा पर ही चल रही है। और संघ का एजेण्डा बिल्कुल साफ है। हिन्दुत्व और राष्ट्रवाद की तमाम बातों के बावजूद असलियत यह है कि संघ इसं देश में देशी-विदेशी बड़ी पूँजी का बेरोकटोक राज चाहता है। और इसी के लिए लोगों को बाँटने-लड़ाने के लिए उसे हिन्दू राष्ट्र का अपना एजेण्डा देश पर थोपना है। यही संघियों के परम गुरू हिटलर का एजेण्डा था और यही इनका भी लक्ष्य है।

मोदी सरकार के पिछले डेढ़ वर्ष के शासन में अब यह बिल्कुल साफ हो चुका है। यह दौर जनता के बुनियादी अधिकारों की कीमत पर देश के शोषक वर्गों के हितों को सुरक्षित करने और उन्हें तमाम तरह से फायदे पहुँचाने के इन्तज़ाम करने में ही बीता है। आम अवाम के लिए 'अच्छे दिन' न आने थे और न आये, लेकिन अपने पूँजीपति आकाओं को अच्छे दिन दिखाने में मोदी ने कोई कसर नहीं उठा रखी। मज़दूरों और ग़रीबों की बात करते हुए सबसे पहला हमला बचे-खुचे श्रम अधिकारों पर किया गया। पहले राजस्थान सरकार ने घोर मज़दूर-विरोधी श्रम सुधार लागू किये और उसी तर्ज़ पर केन्द्र में श्रम क़ानूनों में बदलाव करके मज़दूरों के संगठित होने तथा रोज़गार सुरक्षा के जो भी थोड़े अधिकार कागज़ पर बचे थे, उन्हें भी निष्प्रभावी बना दिया। योजना आयोग को ख़त्म करके बने नीति आयोग का उपाध्यक्ष जिन अरविन्द पनगढ़िया को बनाया गया है वे ही राजस्थान की भाजपा सरकार के श्रम सुधारों के मुख्य सूत्रधार रहे हैं। पनगढ़िया महोदय सारा जीवन अमेरिका में रहकर साम्राज्यवादियों की सेवा करते रहे हैं और खुले बाज़ार अर्थव्यवस्था तथा श्रम सम्बन्धों को 'लचीला' बनाने के प्रबल पक्षधर हैं। इससे पहले मुक्त बाज़ार नीतियों के एक और पैरोकार अरविन्द सुब्रमण्यन को प्रधानमंत्री का मुख्य आर्थिक सलाहकार नियुक्त किया जा चुका है। जो बात हम 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के सामने बार-बार रखते आ रहे हैं वह अब बिल्कुल साफ हो चुकी है। मोदी सरकार के तमाम पाखण्डपूर्ण दावों के बावजूद सच यही है कि यह उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को मनमोहन सरकार से भी ज़्यादा ज़ोरशोर से लागू करेगी और इनसे मचने वाली तबाही के कारण जनता के असन्तोष को बेरहमी से कुचलेगी तथा लोगों को आपस में लड़ाने के लिए साम्प्रदायिक फासीवादियों के हर हथकण्डे का इस्तेमाल करेगी।

एनडीए की सरकार बनने के पहले देश की जनता को तमाम गुलाबी सपने दिखाये गये थे। दावा किया गया था कि महँगाई और बेरोज़गारी की मार को ख़त्म किया जायेगा; पेट्रोल-डीज़ल से लेकर रसोई गैस की कीमतें घटेंगी, रेलवे भाड़ा नहीं बढ़ाया जायेगा; भ्रष्टाचार दूर होगा और विदेशों इतना से काला धन वापस लाया जायेगा कि हर आदमी के बैंक में लाखों रुपये पहुँच जायेंगे! लेकिन पिछले सात महीनों में ही देश की आम मेहनतकश जनता को समझ आने लगा है कि किसके "अच्छे दिन" आये हैं! रसोई गैस की कीमतें और और रेल किराया बढ़ चुका है, खाने-पीने की चीज़ों के दाम आसमान छू रहे हैं। श्रम क़ानूनों से मज़दूरों को मिलने वाली सुरक्षा को

(पेज 13 पर जारी)

सँभलो, है लगने वाला ताला ज़ुबान पर!

सरकार के ख़िलाफ़ बोलने पर पाबन्दी, ग़रीबों-अल्पसंख्यकों की दुर्गति और मेहनतकशों की लूट

यही है महाराष्ट्र सरकार के "अच्छे दिनों" की सौगात

महाराष्ट्र में भाजपा को सरकार बनाये हुए एक साल होने को आया है। केन्द्र में भाजपा सरकार को एक साल से अधिक हो चुका है। हर गली-मोहल्ले में सरकार को गालियों का सामना करना पड़ रहा है। हालत यह है कि जनता को ज़बरदस्ती ख़ामोश रखने के लिए सरकार को नये क़ानून भी लाने पड़ रहे हैं। भाजपा समर्थक जो चुनावों से पहले खूब गरजते थे आज वो बात करने से भी कतराने लगे हैं। काला धन, गुड गवर्नेन्स, अच्छे दिन, मज़बूत सरकार आदि सारे जुमले जो चुनावों से पहले भाजपा समर्थकों की ज़ुबान पर रहते थे आज वही उनके मुँह से बिल्कुल नहीं सुनाई देते। महंगाई और भ्रष्टाचार के लगभग सारे रिकॉर्ड टूट चुके हैं। 24 अगस्त को शेयर बाजार ने जो झटका दिया उसने भी बहुतों की नींद खोल दी है। 100 दिनों में ही देश का कायाकल्प करने चली भाजपा ने चुनाव में जितने वायदे किये थे उनमें से अब तक कितने पूरे हुए यह तो केवल चुटकुलों का विषय रह गया है। भाजपा समर्थक अब बस एक ही रट लगाए हुए हैं- "मोदी जी को

(पेज 9 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आज़ाद के 109वें जन्मदिवस पर गाज़ियाबाद में दिन भर का अभियान

गाज़ियाबाद, 23 जुलाइ। चन्द्रशेखर आज़ाद के 109वें जन्मदिवस के अवसर पर नौजवान भारत सभा (नौभास) के कार्यकर्ताओं ने पूरे दिन गाज़ियाबाद के विभिन्न हिस्सों में पर्चा वितरण, सभाएं एवं पुस्तक व पोस्टर प्रदर्शनी के ज़रिये लोगों को आज़ाद और उनकी धारा के क्रान्तिकारियों के प्रेरणादायी जीवन एवं विचारों के प्रति जागरूक किया। उन्होंने युवाओं का आह्वान किया कि वे आज़ाद की क्रान्तिकारी विरासत को पुनर्जीवित करने के लिए आगे आएं।

कार्यक्रम की शुरुआत सुबह गाज़ियाबाद रेलवे स्टेशन पर यात्रियों के बीच आज़ाद की स्मृति में नौजवान भारत सभा द्वारा प्रकाशित एक पर्चा का वितरण सुबह हुआ। नौभास के कार्यकर्ताओं ने रेलवे प्लेटफार्म पर छोटी-छोटी सभाएं करके लोगों को आज़ाद के प्रेरणादायी जीवन और उनके क्रान्तिकारी विचारों को बताते हुए बड़ी संख्या में पर्चे वितरित किये। दिन के दूसरे कार्यक्रम में एमएमएच इंटर कॉलेज के सामने एक पुस्तक एवं पोस्टर प्रदर्शनी लगायी गई। इस प्रदर्शनी में चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, सुखदेव व राजगुरू जैसे क्रान्तिकारियों के जीवन और उनके विचारों से जुड़ी ढेरों किताबों एवं आज के दौर की तमाम समस्याओं का क्रान्तिकारी नज़रिये से विश्लेषण करने वाली पुस्तिकाओं की स्टॉल लगायी गयी। इसके अतिरिक्त प्रदर्शनी में कई आकर्षक पोस्टर भी लगाये गये जिनमें क्रान्तिकारियों के उद्धरण व विचारोत्तेजक नारे लिखे थे। यह प्रदर्शनी विशेष रूप से युवाओं एवं आम आबादी के लिए आकर्षण का केन्द्र रही। नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने इस प्रदर्शनी में आये लोगों के साथ क्रान्तिकारियों के विचारों को जान-समझकर उनके अधूरे सपनों को पूरा करने की ज़रूरत के बारे में बातचीत की।

शाम को नौभास के कार्यकर्ताओं ने विजय नगर के इलाके में पर्चा वितरण किया एवं नुक्कड़ सभाएँ आयोजित करके लोगों के बीच आज़ाद के विचारों को पहुँचाया।

आपस की बात

हालात को बदलने के लिए आगे आना होगा

मैं लुधियाना में प्लाट नं. 97, शिवा डाईग, फेस-4, फोकल प्वाईंट, में काम करता हूँ। जिसमें लगभग 60 मजदूर काम करते हैं, कोई माल ढुलाई, कोई माल सुखाई, कोई ब्यालर तो कोई कपड़ा रंगाई में काम करता है। मैं कपड़ा रंगाई में काम करता हूँ। मेरे साथ 10 मजदूर काम करते हैं, हमारी मशीनों पर गर्मी बहुत ज्यादा होती है। मशीनों के अन्दर 135 डिग्री गर्म रंग वाला पानी भरा होता है। इन जानलेवा हालातों में हम 12-12 घंटे काम करते हैं। यहाँ पर हम लोगों को कोई भी सुरक्षा उपकरण नहीं दिये जाते, ना तो कैमिकल से बचने के लिए जूते दिये जाते हैं और ना ही हाथों में पहनने के लिए दस्ताने दिये जाते हैं। इस काम में कोई भी नया मजदूर जल्दी भर्ती नहीं होता क्योंकि यहाँ पर गर्मी सबसे ज्यादा होती है। ब्यालर पर काम करना सबसे ज्यादा कठिन है, क्योंकि यहाँ तो 12 घंटे आग के सामने खड़े होकर काम करना होता है। हम सभी मजदूरों को बेहद कम वेतन पर 12-12 घंटे काम करना पड़ता है और इस कारखाने में पक्की भर्ती नहीं होती, बहुत ही कम मजदूरों को पक्का भर्ती किया हुआ है। यानी इस फैक्ट्री में मालिक श्रम कानून लागू नहीं करता। किसी भी मजदूर का पहचान पत्र नहीं बनाया गया, ना कोई हाजिरी कार्ड दिया गया। डाईग मशीन पर अक्सर हादसे होते रहते हैं, कभी मशीन फट जाती है, कभी ब्यालर फट जाता है और कभी मशीन में करंट आने से मजदूर मर जाते हैं और इन भयानक हालातों की लोगों के पास कोई जानकारी नहीं पहुँचती। इन हालातों के बारे में मजदूर सोचते तो हैं, पर अपनी रोजी-रोटी के लिए काम करते रहते हैं। ऐसे हालातों के बारे में हमें हर किसी को बताना होगा और इन हालातों को बदलने के लिए आगे आना होगा।

- लुधियाना से एक डाईग मजदूर

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता: (वार्षिक) 70 रुपये (डाकख़र्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
मूल्य : एक प्रति – रु. 5/-
वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित)
आजीवन सदस्यता - 2000/-

आंगनवाड़ी कर्मचारियों के जुझारू संघर्ष के आगे झुकी केजरीवाल सरकार!

दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एंड हेल्पर्स यूनियन के नेतृत्व में आंगनवाड़ी कर्मचारियों के संघर्ष को मिली शानदार जीत!

दिल्ली में आई.सी.डी.एस स्कीम के तहत काम कर रही आंगनवाड़ी वर्कर्स और हेल्पर्स के 23 दिन लम्बे चले जुझारू संघर्ष के आगे केजरीवाल सरकार को अपने घुटने टेकने पड़े। अपनी मांगों को लेकर 7 दिनों तक अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल पर बैठी आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायिकाओं की सारी तात्कालिक मांगों को केजरीवाल सरकार को बिना किसी शर्त के मानने को मज़बूर होना पड़ा। आंगनवाड़ी कर्मचारियों को यह जीत दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एंड हेल्पर्स यूनियन के नेतृत्व में हासिल हुई।

यह पूरा आंदोलन 7 जुलाई से आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के स्वत:स्पूर्त विरोध से जन्मा था। 7 जुलाई से दिल्ली के सिविल लाइन्स स्थित अरविन्द केजरीवाल के आवास पर आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और सहायिकाएँ अपने पिछले 8-9 महीनों के मानदेय का भुगतान न होने को लेकर लगातार प्रदर्शन कर रहे थे। मगर आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के संघर्ष को सही दिशा और गति देने का काम दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एंड हेल्पर्स यूनियन ने किया।

आंगनवाड़ी केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित 6 साल तक के बच्चों की देखभाल के केन्द्र होते हैं। इनकी शुरुआत 1975 में एकीकृत बाल विकास सेवाएँ (आई.सी.डी.एस.) कार्यक्रम के तहत बच्चों में भूख और कुपोषण दूर करने के लिए की गयी थी। करीब 1000 की आबादी पर एक आंगनवाड़ी केन्द्र होता है जिसकी व्यवस्था आंगनवाड़ी कार्यकर्ता द्वारा की जाती है। उन्हें स्वास्थ्य, पोषण और बच्चों की देखभाल के लिए चार महीने का प्रशिक्षण दिया जाता है। 20 से 25 आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं पर एक सुपरवाइज़र होती है जिसे मुख्य सेविका कहते हैं। 4 मुख्यसेविकाओं पर एक बाल विकास परियोजना अधिकारी (सी.डी.पी.ओ.) होता है। देश में लगभग साढ़े दस लाख आंगनवाड़ी केन्द्र हैं जिनमें करीब 18 लाख मुख्यत: महिला कार्यकर्ता और सहायिकाएँ काम करती हैं। वे ग़रीब परिवारों को टीकाकरण, स्वस्थ भोजन, स्वच्छ पानी जैसी सुविधाओं के साथ ही शिशुओं और छोटे बच्चों तथा गर्भवती एवं स्तनपान कराने वाली महिलाओं की देखभाल भी करती हैं। मगर ग़रीबों की बात करने वाली तमाम सरकारें इन लाखों महिलाओं के अधिकारों की लगातार अनदेखी करती रही हैं। दिल्ली में भी 10 हज़ार से अधिक कार्यकर्ता और सहायिकाएँ हैं जो मज़दूरों और ग़रीबों की बस्तियों में बच्चों का ध्यान रखती हैं।

आंगनबाडी कार्यकर्ता लगातार 7 जुलाई से अरविन्द केजरीवाल के घर के बाहर प्रदर्शन कर रहे थे। पर न तो केजरीवाल सरकार ने आंगनवाड़ी की इन महिलाओं की परेशानियों को जानने की कोई कोशिश की और न ही उनसे बात करने तक की ज़हमत उठाई। बिगुल मज़दूर दस्ता शुरुआत से ही आंगनवाड़ी कर्मचारियों के संघर्ष का समर्थन कर रहा था। स्वत:स्फूर्त खड़े हुए इस आंदोलन में हिस्सा ले रही आंगनवाड़ी कर्मचारियों के बीच से उनकी अपनी क्रान्तिकारी यूनियन का जन्म हुआ, जिसमे ट्रेड यूनियन जनवाद के सिद्धान्तों के तहत चुने हुए प्रतिनिधियों की एक कमिटी का गठन किया गया। जिसके बाद इस पूरे आंदोलन को क्रांतिकारी चेतना के साथ आगे बढ़ाया गया। शुरआती मांगों में आंगनवाड़ी के कर्मचारियों की मांग थी की उन्हें स्थायी किया जाये, उनकी आय की श्रेणी सुनिश्चित की जाये और प्रोहत्साहन राशि की बजाय वेतन दिया जाये और इस वेतन का भुगतान हर महीने सुनिश्चित समय तक किया जाये साथ ही सभी कर्मचारियों को पहचान पत्र दिया जाए, शीतकालीन और ग्रीष्मकालीन अवकाश दिये जायें।

अपनी इन्ही सभी मांगों को लेकर आंगनवाड़ी कर्मचारी अरविन्द केजरीवाल के घर के आगे प्रदर्शन कर रहे थे। मगर सरकार ने प्रदर्शनकर्मियों की मांगों की कोई सुध नहीं ली। अपनी बात को सरकार तक पहुचाने के लिए आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने 16 जुलाई को सिविल लाइन्स से लेकर विधान सभा तक एक चेतावनी रैली निकली और अगले दिन यानी 17 जुलाई को आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने दिल्ली सचिवालय पर एक विशाल प्रदर्शन का आयोजन करके केजरीवाल सरकार को अपनी मांगों का ज्ञापन सौपा। मगर इतने पर भी सरकार की तरफ से कोई कार्रवाई करना तो दूर आंगनवाड़ी कर्मचारियों को कोई आश्वासन तक नहीं दिया गया। लेकिन अपने संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने 18 जुलाई से क्रमिक

भूख हड़ताल पर बैठने का निर्णय लिया और साथ ही अपनी ताकत का सही आकलन लगाते हुए यूनियन और आंगनवाड़ी कर्मचारियों की आम सहमति से ये तय किया गया कि जब तक अपनी यूनियन का विस्तार नहीं किया जाता और अपनी ताकत को और नहीं बढ़ाया जाता तब तक स्थायी होने की मांग को मनवाने के लिए सरकार पर दबाव डालना मुश्किल होगा। यही से इस आंदोलन में स्थायी होने की दीर्घकालिक मांगों के साथ साथ तात्कालिक मांगें जोड़ दी गयी जिनको लेकर हड़तालकर्मी क्रमिक भूख हड़ताल पर बैठे। यह क्रमिक भूख हड़ताल 5 दिन चली। इस दौरान पर्चे निकाल कर केवल आंगनवाड़ियों में ही नहीं बल्कि दिल्ली की आम जनता, विश्वविद्यालयों के छात्रों व अध्यापकों के बीच भी आंगनवाड़ी के कर्मचारियों के संघर्ष का समर्थन करने और उनके इस संघर्ष में हर संभव मदद करने की अपील की गयी। पर्चों और पोस्टरों के ज़रिये आंगनवाड़ी कर्मचारियों के संघर्ष को व्यापक जनता तक ले जाया गया।

हर बीतते दिन के साथ हड़ताल स्थल यानी केजरीवाल के आवास के बाहर आंगनवाड़ी कर्मचारियों की संख्या बढ़ती जा रही थी मगर इस के बावजूद केजरीवाल सरकार ने हड़तालकर्मियों की कोई सुध नहीं ली। अपने संघर्ष को अगले चरण में लेकर जाते हुए और निर्णायक फैसला करते हुए 23 जुलाई से आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल पर बैठने की घोषणा की। लगातार केजरीवाल सरकार तक अपनी बात पहुँचाने के लिए आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने दिल्ली सचिवालय, विधान सभा से लेकर केजरीवाल के घर पर लगने वाले जनता दरबार तक में अपने ज्ञापन सौपे। मगर जब हर जगह अपनी बात को लेकर जाने के बावजूद सरकार के उदासीन रवैये में कोई फर्क नहीं आया तब आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने केजरीवाल के घर के आगे ही अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल पर बैठना मुनासिब समझा।

इस आंदोलन में भी आंगनवाड़ी कर्मचारियों को अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा। सबसे पहला खतरा तो इस आंदोलन को भितरघातियों और सीटू, एस.यू.सी.आई जैसे तमाम दलालों से था, जो लम्बी चल रही हड़ताल को तुड़वाने के लिए लगातार यूनियन के ख़िलाफ़ कुत्साप्रचार कर रहे थे। गौरतलब बात यह है कि आंगनवाड़ी कर्मचारियों की सबसे बड़ी यूनियन सीटू से सम्बद्ध है। इसके बावजूद आंगनवाड़ी कर्मचारियों के संघर्ष को मज़बूत करने की बात करने की बजाय सीटू के दलालों ने आंगनवाड़ी कर्मचारियों से हड़ताल तोड़ने को कहा। सीटू के दलाल बार-बार कर्मचारियों के बीच जाकर 2 सितम्बर को होने वाली अपनी रस्मी कवायद के दिन प्रदर्शन करने की गुहार लगा रहे थे। इन दलालों ने कुछ आंगनवाड़ी कर्मचारियों को अपना मोहरा बनाकर हड़ताल को तोड़ने की हर मुमकिन कोशिश की। लेकिन आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने इन तमाम विजातीय तत्वों को खदेड़कर बाहर का रास्ता दिखा दिया। भरसक प्रयास करने के बाद भी इन दलालों और लफ़्फ़ाज़ों की कोई चाल काम नहीं आई और आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने इन्हें इनकी असली औकात दिखाकर बाहर कर दिया। वही दूसरी ओर हड़ताली कर्मियों को परेशान करने और आंदोलन को कमजोर करने के लिए सरकार सुपरवाइजरों और सी.डी.पी.ओ. से लगातार दबाव बनवा रही थी कि अगर हड़ताल में शामिल होगे तो नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा। अलग-अलग केन्द्रों पर पुलिस की धमकियों से लेकर तमाम तरह से दबाव कर्मचारियों पर बनाये जा रहे थे। हड़ताल स्थल पर शौचालय की व्यवस्था न करवाना, पानी के टैंकर को हटवा देने, तबियत बिगड़ने पर डॉक्टरी सहायता न पहुँचाने और पुलिस को भेज हड़ताली कर्मियों के तम्बू को उखड़वाने जैसी तमाम कोशिशों के बावजूद न तो दलाल और न ही सरकार आंगनवाड़ी के संघर्ष को तोड़ पाये। आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने अपनी परेशानियों को दिल्ली के उप राज्यपाल नजीब जंग के सामने भी रखा मगर नजीब जंग ने आंगनवाड़ी कर्मचारियों को सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग के सचिव से जाकर मिलने की सलाह दी। 7 दिन लम्बी चली अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल और जनता द्वारा पैदा किये गए दबाव के कारण केजरीवाल सरकार को आंगनवाड़ी कर्मचारियों के आगे घुटने टेकने पर मजबूर होना पड़ा। जो सरकार 22 दिनों से आंगनवाड़ी कर्मचारियों की मांगों को अनसुना कर रही थी उसी के मुखिया अरविन्द केजरीवाल ने खुद आंगनवाड़ी कर्मचारियों के एक प्रतिनिधि मंडल को 29 जुलाई को वार्ता के लिए आमंत्रित किया। यह वही सरकार थी जिसके महिला एवं बाल विकास विभाग के मंत्री संदीप कुमार और सेक्रेटरी आंगनवाड़ी कर्मचारियों से मिलने के लिए समय निकालने को तैयार नहीं थे मगर जनता की एकता और आंगनवाड़ी कर्मचारियों के जुझारू संघर्ष को देख कर न केवल संदीप कुमार आंगनवाड़ी कर्मचारियों से मिले बल्कि खुद अरविन्द केजरीवाल ने आंगनवाड़ी कर्मचारियों की सभी तात्कालिक मांगों को बिना किसी शर्त स्वीकार करते हुए उनके ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये। और साथ ही प्रतिनिधि मंडल में मौजूद कर्मचारियों को यह भरोसा दिलाया कि वह जल्द से जल्द सभी मांगों को लागू भी कर देंगे।

अपनी जीत की खुशी मनाते हुए आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने सिविल लाइन्स से विधान सभा तक एक विजय जुलूस निकाला जिसमे 3000 से भी ज्यादा आंगनवाड़ी कर्मचारियों ने हिस्सा लिया। विजय जुलुस के बाद सिविल लाइन्स के धरना स्थल पर हुई सभा में तात्कालिक मांगों को माने जाने के मायनों और आगे के संघर्ष के बारे में बात की गयी। महिला एवं बाल विकास विभाग के मंत्री संदीप कुमार और डिप्टी डायरेक्टर सौम्या ने सभा में आकर आंगनवाड़ी कर्मचारियों से बात की और साथ ही वार्ता के बाद तैयार किये गये आर्डर की एक कॉपी को दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एंड हेल्पर्स यूनियन के प्रतिनिधियों को सौंपा।

दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एंड हेल्पर्स यूनियन की सदस्य शिवानी ने बताया कि अभी सरकार ने केवल हमारी तात्कालिक मांगें जिनमें पिछले 8-9 महीनों के बकाये मानदेय के तुरंत भुगतान, पहचान पत्र देने, हर महीने की 10 तारीख तक भुगतान करने, सबला स्कीम के भत्ते के भुगतान और बीमा की मांगें मानी है। और साथ ही वेतन बढ़ोतरी की बात भी अरविन्द केजरीवाल ने कही है। अपनी दीर्घकालिक मांगों जैसे कि सरकारी कर्मचारी का दर्जा पाने, न्यूनतम वेतन, ई.एस.आई व पी.एफ आदि के लिए आंगनवाड़ी कर्मचारी अपना संघर्ष जारी रखेंगे। मगर जैसा तमाम सरकारे करती हैं वैसा ही कुछ केजरीवाल सरकार ने भी किया। 3 दिन का समय बीत जाने के बाद भी सभी कर्मचारियों के बकाये वेतन का भुगतान नहीं किया गया जिसके चलते 9 अगस्त को जंतर मंतर पर दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एंड हेल्पर्स यूनियन ने सभी आंगनवाड़ी कर्मचारियों की एक आम सभा बुलाकर फिर से सरकार पर दबाव बनाने और आगे की रणनीति पर बातचीत की। इसके बाद 16 अगस्त को फिर से जंतर मंतर पर महाजुटान आयोजित कर केजरीवाल सरकार से उनके द्वारा स्वीकार की गयी तात्कालिक मांगों को जल्द से जल्द पूरा करने की मांग की गयी। साथ ही यूनियन की सदस्यता का विस्तार भी किया जा रहा है। मात्र 2 हफ्तों के भीतर 2500 लोगों ने यूनियन की सदस्यता हासिल की है। दिल्ली स्टेट आंगनवाड़ी वर्कर्स एंड हेल्पर्स यूनियन आंगनवाड़ी कर्मचारियों के जायज हकों के लिए संघर्षरत है। अपनी मिली इस जीत आंगनवाड़ी कर्मचारियों में उत्साह और जोश है और सभी अपनी दीर्घकालिक मांगों को मनवाने के लिए संघर्ष करने के लिए तत्पर है।

– सिमरन

लुधियाना में भारती डाइंग मिल में हादसे में मज़दूरों की मौत और इंसाफ़ के लिए मजदूरों का एकजुट संघर्ष

लुधियाना के मेहरबान में (राहों रोड) स्थित भारती डाईंग नाम के कारखाने में 22 अगस्त को डाईंग मशीन में धामाका होने से निरंजन (22 साल) और सुरेश (40 साल) नाम के दो मशीन बुरी तरह से जख्मी हो गए। कई दिनों तक अस्पताल में जिन्दगी-मौत की लड़ाई लड़ते हुए 25 अगस्त को सुरेश और 27 को निरंजन की मौत हो गई। इसे सिर्फ एक हादसा कह देना ठीक नहीं होगा। यह मुनाफाखोर व्यवस्था के हाथों निर्मम हत्याएँ हैं।

लुधियाना के अन्य कारखानों की तरह भारती डाईंग में भी हादसों से सुरक्षा के जरूरी इंजताम नहीं हैं। मशीनों की जरूरत के मुताबिक मुरम्मत नहीं करवाई जाती। अत्याधिक तापमान की वजय के डाईंग मशीन के फटने का हर समय डर बना रहता था। लेकिन कारखाना मालिक को तो सिर्फ मुनाफा दिखाई देता था। श्रम कानूनों को जरा भी इस कारखाने में लागू नहीं किया जाता। मजदूरों की सुरक्षा की उसी कोई परवाह नहीं थी। मुनाफाखोरी के अंधे किए मालिक की आपराधिक लापरवाही के चलते ही मशीन फटने की घटना घटी।

मशीन फटने के बाद भी अगर दोनों मजदूरों के इलाज पर कारखाना मालिक दिलचस्पी दिखाता तो शायद उनकी जान बच जाती। पता चला है कि शुरू में कुछ पैसा जमा करवाने के बाद मालिक ने अस्पताल को पैसा देना बन्द कर दिया। इसके कारण सी.एम.सी. अस्पताल वालों ने भी निरंजन और सुरेश का इलाज करना बन्द कर दिया और उनकी मौत हो गई।

मजदूरों की मौत होने के बाद भी मालिक ने अमानवीय रुख नहीं त्यागा। मालिक ने पीड़ित परिवारों को मुआवजा देने से साफ़ इनकार कर दिया। निरंजन के रिश्तेदारों को मालिक ने अपने घर बुलाकर बेइज्जत किया। मुआवजे के नाम पर वह दोनों परिवारों को 25-25 हजार देने तक ही तैयार हुआ। पीड़ित परिवारों ने मालिक को कहा कि उन्हें भीख नहीं चाहिए बल्कि अपना हक चाहिए। मालिक ने उचित मुआवजा देने से देने से साफ मना कर दिया। सुरेश का परिवार कहाँ गया, उसका इलाज कब और कहाँ किया गया इसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिली। निरंजन का परिवार उत्तर प्रदेश से काफी देर से 30 को ही लुधियाना पहुँचा। जान-पहचान वाले अन्य मजदूरों ने पुलिस के पास जाकर इंसाफ़ लेने की सोची।

इनमें से किसी मजदूर ने टेक्सटाईल-और भारती डाईंग के गेट पर धरना-प्रदर्शन किया। यह फैसला किया गया कि कोई भी नेता अकेले पुलिस या मालिकों से बात करके फैसला नहीं करेगा। पुलिस व मालिक से बातचीत में भी यूनियन के नेता, पीड़ित परिवार व लोगों द्वारा चुने कुछ अन्य व्यक्ति शामिल होंगे। अन्तिम फैसला पीड़ित परिवार ने लेना है।

इस संघर्ष में शामिल अधिकतर लोगों के पहले किसी भी यूनियन के बारे में विचार साकारात्मक नहीं थे। लेकिन संघर्ष के दौरान टेक्सटाइल-हौजरी कामगार यूनियन के जनवादी ढंग-तरीके से वे काफी प्रभावित हुए। मजदूरों ने संघर्ष को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करने वाले दलालों की पहचान की और उनकी चालों को नाकाम किया। पुलिस हमेशा की तरह मालिक का ही साथ दे रही थी। एकजुटता से पुलिस पर दबदबा बनाया गया। पुलिस ने मजदूरों को डराने के लिए ''फोर्स'' इस्तेमाल करने की धमकियाँ दीं। लेकिन मजदूर बार-बार दी जा रहीं धमकियों के बावजूद भी पुलिस चौंकी पर धारने-प्रदर्शन में डटे रहे और मालिक को थाने पर लाने के लिए मजबूर किया। मृतक निरंजन की बहन और चाचा ही यहाँ पहुँचे थे जो जिन्होंने एक लाख रूपए मुआवजे (संस्कार आदि का अल्ग से खर्चा) पर समझौता करने का निर्णय कर लिया। मजदूरों को इस बात का गहरा अहसास था कि भारती डाईंग के मालिक, जो कि इलाके में काफी अड़ियल मजदूर विरोधी मालिक के रूप में जाना जाता है, को झुका पाना एक बड़ी जीत है।

इस संघर्ष के दौरान मजदूरों की बुरी हालतों, इन हालतों के वास्तविक कारणों, एकजुटता बनाने की जरूरत आदि पर काफी बातचीत हुई जिसका उनकी चेतना पर काफी अच्छा असर गया। मजदूरों ने इस संघर्ष के दौरान यह अच्छी तरह से देखा और समझा के यूनियन का अर्थ वो नहीं है जो चुनावी पार्टियों के साथ जुड़ी दलाल यूनियनों और दलाल नेताओं ने बना दिया है। उन्होंने इस बात को जाना कि एक सच्ची यूनियन का क्या अर्थ होता है, यूनियन बनाने की कितनी बड़ी जरूरत है और इसका निर्माण सम्भव है।

लुधियाना में गुण्डागर्दी के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष

बीती 6 सितम्बर को विशाल संख्या में जुटे लोगों ने टिब्बा रोड लूट-मार काण्ड व लुधियाना में बढ़ती गुण्डागर्दी के ख़िलाफ़ तीन जुझारू जनसंगठनों टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, कारखाना मज़दूर यूनियन व नौजवान भारत सभा के साझे बैनर तले बस्ती जोधेवाल थाने पर ज़ोरदार रोष प्रदर्शन किया। 'लोगों की सुरक्षा की गारण्टी करो!' 'टिब्बा रोड लूट-मार काण्ड के दोषियों बिल्ला-हैपी को गिरफ्तार करो!', 'बस्ती जोधेवाल पुलिस मुर्दाबाद!', आदि नारे बुलन्द करते हुए प्रदर्शनकारियों ने माँग की कि लूट-मार काण्ड के दोषियों को गिरफ्तार करके जेल भेजा जाए और लुधियाना में लोगों के साथ बढ़ती जा रही गुण्डागर्दी, लूट-मार, छुरेबाज़ी, स्त्रियों को अगवा करने, बलात्काार, छेड़छाड़ आदि अपराधों को रोकने के लिए पुख्ता कदम उठाए जायें। प्रदर्शन को कारखाना मज़दूर यूनियन के अध्यक्ष लखविन्दर, टेक्सटाइल-होज़री कामगार यूनियन के अध्यक्ष राजविन्दर, नौजवान भारत सभा के नवकरण, यूनियन नेताओं छोटेलाल, महेश, प्रेमनाथ, विशाल आदि ने सम्बोधित किया।

लुधियाना में साधारण जनता खासकर प्रवासी मज़दूर अक्सर गुण्डागर्दी का शिकार होते रहते हैं। पुलिस हमेशा मूकदर्शक बनकर देखती ही नहीं रहती बल्कि गुण्डागर्दी का साथ भी देती है। 27 अगस्त को टिब्बा रोड पर दो गुण्डों ने थोड़े समय के अन्तराल पर दो मज़दूरों को लूट-मार का शिकार बनाया। हो चुकी है। थाने पर रोष प्रदर्शन के बाद इस मामले में धारा 382, 34, 323 के तहत एफ.आई.आर. दर्ज हुई थी। इसके चार दिन बाद पुलिस ने दोषियों को पकड़ तो लिया लेकिन बिना गिरफ्तारी दिखाये छोड़ दिया। साझा प्रदर्शन से पहले ही पुलिस ने दोनों दोषियों को फिर से गिरफ्तार कर लिया लेकिन यह रिपोर्ट लिखे जाने तक पुलिस ने कागजों में दोषियों की गिरफ्तारी दर्ज नहीं की थी।

टिब्बा रोड मामले के ये दोषी व इनके साथियों से इस इलाके के लोग खासकर मज़दूर काफी परेशान हैं। मज़दूरों से मारपीट करना, उनसे पैसे-मोबाइल छीन लेना, लड़कियाँ छेड़ना आदि इनका रोज़मर्रा का काम है। पुलिस के पास शिकायतें होने के बावजूद कोई कार्रवाई नहीं हुई। अब फिर पुलिस इस लूट-मार की घटना को आपसी झगड़े का मामला बताकर इन गुण्डों को बचाने में लगी है। इलाके का एक अकाली नेता व कुछ अन्य व्यक्ति गुण्डों की मदद कर रहे हैं। मज़दूरों के अलावा बाकी स्थानीय आबादी गुण्डों के ख़िलाफ़ खुलकर सामने नहीं आ रही लेकिन गुण्डागर्दी के ख़िलाफ़ मज़दूरों के संघर्ष से लोग काफी खुश हैं।

लूट-मार का शिकार मज़दूरों को केस वापिस न लेने पर जान से मार देने, पीड़ित शम्भू की लड़कियों को तंग करने जैसी धमकियाँ दी जा रही हैं। थाने में शिकायत होने के बाद भी शम्भू पर उपरोक्त गुण्डा गिरोह जानलेवा हमले कर चुका है। शम्भू के बच्चों को डर के कारण स्कूल छोड़ना पड़ा है। बस्ती जोधेवाल पुलिस की इस घटिया कारगुजारी के बारे में ए.डी.सी.पी-4 सतपाल सिंह अटवाल को मिलकर लिखित में शिकायत दी गई है। मुख्य मंत्री, डी.जी.पी., पुलिस कमिश्नर, हाईकोर्ट के मुख्य जज, मानवाधिकार आयोग को चिट्ठियाँ भेजी गई हैं। लेकिन प्रशासन की ओर से पीड़ितों की सुरक्षा के लिए कोई बयान तक नहीं दिया गया है। यूनियन ने अपने दम पर उनकी सुरक्षा के लिए कदम उठाये हैं। इस प्रकार से यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि पुलिस, प्रशासन, सरकार से लोगों को सुरक्षा की उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। लोगों को अपनी सुरक्षा के लिए गुण्डों-पुलिस-नेताओं के नापाक गठबन्धन के ख़िलाफ़ जागरूक, एकजुट और लामबन्द होकर अपनी सुरक्षा के लिए कदम उठाने होंगे।

मज़दूर पंचायत का आयोजन

लुधियाना के पुडा मैदान में 16 अगस्त को टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन द्वारा मज़दूर पंचायत का आयोजन किया गया। पंचायत में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन की कार्यकारिणी समिती द्वारा प्रस्तावित एक मांग पत्र पर चरचा की गई। मांग पत्र को अंतिम रूप दिया गया और इसे टेक्सटाइल और हौज़री मालिकों को देने का फैसला किया गया। इस मांग पत्र में 25 प्रतिशत वेतन वृद्धि, ई.एस.आई, पी.एफ., पहचान पत्र, हौज़री, बोनस, छुट्टियां, हादसों और बीमारियों से सुरक्षा के प्रबंध आदि सभी श्रम कानून लागू करने, कारखानों में मज़दूरों से मालिकों द्वारा मारपीट, गालीगलौच, बदसलूकी बंद करने आदि मांगें की गई है। मज़दूर पंचायत ने ऐलान किया कि यह मांगें पूरी करवाने के लिए संघर्ष तेज किया जायेगा।

मज़दूर पंचायत के दौरान मज़दूरों ने कारखानों में मज़दूर की हो रही बरबर लूट के बारे में खुल कर बात रखी। कारखानों में मज़दूरों को 12-14 घंटे सख्त मेहनत करनी पड़ती है। इतनी मेहनत के बाद भी उनको बहुत कम वेतन मिलता है और वे बुरी जिंदगी जीने को मजबूर हैं। मज़दूरों की मेहनत की लूट करके बेहिसाब मुनाफा कमाने वाले मालिक ऐयाशी भरी जिंदगी जीते है। कारखानों में श्रम कानून लागू नही होते, न न्यूनतम वेतन लागू होता है, न आठ घंटे काम का कानून। श्रम विभाग सिर्फ दिखावे के लिए है। वास्तव में पूरा सरकारी ढाँचा ही मालिकों से मिलकर चलता है और मज़दूरों की लूट में शामिल है।

मज़दूर पंचायत के दौरान टेक्सटाइल-होज़री कामगार यूनियन के नेताओं व सदस्यों राजविन्दर, लखविन्दर, प्रेमनाथ, छोटेलाल, विश्वनाथ, निर्भय आदि ने बात रखी। विभिन्न मज़दूर साथियों ने क्रान्तिकारी गीत भी प्रस्तुत किये।

– बिगुल संवाददाता

डिलीवरी मज़दूरों के निर्मम शोषण पर टिका है ई-कॉमर्स का कारोबार

पीठ पर विशालकाय बैग लादे, ग्राहकों तक माल पहुँचाने की हड़बड़ी में तेज़ रफ़्तार बाइक चलाते हुए कुछ लोगों को आपने अक्सर सड़कों पर देखा होगा। वे फ्लिपकार्ट, अमेज़न और स्नैपडील जैसी ई-कॉमर्स कम्पनियों के डिलीवरी मज़दूर होते हैं। पिछले कुछ वर्षों में ऑनलाइन शॉपिंग के कारोबार में ज़बर्दस्त बढ़ोतरी देखने में आयी है। अब यह 1 लाख करोड़ रुपये से भी ज़्यादा का कारोबार हो चुका है। पूँजीवादी मीडिया और खाया-पीया-अघाया मध्य वर्ग इन ऑनलाइन शॉपिंग की कम्पनियों का अक्सर गुणगान करते हुए पाया जाता है। उन्हें माउस का बटन दबाने भर से ही ज़रूरत और विलासिता की सभी चीज़ें उनके घर तक डिलीवर जो हो जाती हैं! लेकिन ये खाया-पीया-अघाया तबका अगर इस ऑनलाइन शॉपिंग के कारोबार की कार्य-प्रणाली पर नज़र दौड़ाने की ज़हमत उठाये तो वह पायेगा कि ये कम्पनियाँ उसकी ज़िन्दगी में सहूलियत इसीलिए ला पाती हैं क्योंकि वे उनके लिए काम करने वाले डिलीवरी मज़दूरों का भयंकर शोषण करती हैं। आज इन तमाम ई-कॉमर्स कम्पनियों के लिए काम करने वाले डिलीवरी मज़दूरों की संख्या लाख का आँकड़ा पार कर चुकी है। 21वीं सदी में पूँजीवाद ने उत्पादन के तौर-तरीकों में तो अहम बदलाव किये ही हैं, साथ ही साथ उत्पादों के वितरण के तौर-तरीकों में भी बहुत तेज़ी से बदलाव देखने को आ रहा है। ऐसे में ऑनलाइन शॉपिंग की इस नयी कार्यप्रणाली को समझना बेहद ज़रूरी हो जाता है।

ई-कॉमर्स के कारोबार में बढ़त की वजह यह है कि अपनी ज़रूरत व विलासिता के जिन साज़ो-समान के लिए मध्य वर्ग और उच्च वर्ग को बाज़ार में जाने की ज़हमत उठानी पड़ती थी, वो अब उतने ही दामों में और यहाँ तक कि उससे भी कम दामों में घर बैठे मिल जाते हैं। इंटरनेट और ऑनलाइन बैंकिंग के प्रसार ने ऑनलाइन शॉपिंग के लिए ज़रूरी बुनियादी ढाँचा तैयार किया है। ऐसे में यह सवाल उठना लाज़िमी है कि फ्लिपकार्ट, अमेज़न व स्नैपडील जैसी ऑनलाइन शॉपिंग की कम्पनियाँ इतने सस्ते दाम पर चीज़ों को कैसे बेच पाती हैं। मार्क्सवादी विज्ञान हमें बताता है कि मालों के दाम उनके विनिमय मूल्य के आधार पर तय होते हैं जिसका स्रोत उत्पादन में लगे मज़दूरों का श्रम होता है। मालों में मूल्य पैदा करने के बावजूद मज़दूरों को कुल उत्पादित मूल्य का एक बेहद छोटा हिस्सा ही मज़दूरी के रूप में मिलता है जबकि बड़ा हिस्सा (अधिशेष) पूँजीपति हड़प जाता है। हड़पे गए अधिशेष में से ही पूँजीपति मुनाफ़ा कमाता है एवं उसी में से वह वितरण के क्षेत्र में व्यापारियों, आढ़तियों एवं दुकानदारों के बीच बंदरबाँट भी करता है।

पारम्परिक दुकानदार को एक दुकान लेनी पड़ती है और ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए उसके रख-रखाव पर ख़र्च करना पड़ता है। ऑनलाइन शॉपिंग की कम्पनियाँ इस ख़र्च से बच जाती हैं। वे कई सप्लायर्स के साथ संपर्क में रहती हैं और मोल-तोल करके दामों को कम से कम रखकर अपनी वेबसाइट, ईमेल आदि माध्यमों से ग्राहकों को अपनी ओर खींचती हैं। यही नहीं ये दैत्याकार कम्पनियाँ कई बार तो ग्राहकों को आकर्षित करने और बाज़ार में अपने ग्राहक बनाने के लिए तात्कालिक तौर पर नुकसान सहकर भी मालों को कम दामों पर बेचने को तैयार हो जाती हैं। वे ऐसा इसलिए कर पाती हैं क्योंकि उनके पास इफ़रात पूँजी होती है। अमेज़न ने तो अमेरिकी बाज़ार पर इसी तरह से क़ब्ज़ा किया है और उसके पास पहले से ही इतनी पूँजी है कि वह कई सालों तक घाटे में भी रहकर कारोबार कर सकती है। फ्लिपकार्ट जैसी भारतीय कम्पनियों को भी वेंचर कैपिटलिस्ट कम्पनियों से थोक के भाव पूँजी आ रही है जिसकी बदौलत वे बाज़ार में टिकी हुई हैं। वेंचर कैपिटलिस्ट कम्पनियाँ ऐसी कम्पनियों में पूँजी इसलिए लगाती हैं क्योंकि उन्हें भरोसा होता है कि भविष्य में ये

कम्पनियाँ अपने प्रतिस्पर्द्धियों को पछाड़कर बाज़ार में इज़ारेदारी क़ायम करके मुनाफ़ा पीटेंगी तो उनको अपने निवेश पर ज़बर्दस्त रिटर्न मिलेगा। ऑनलाइन शॉपिंग के ग्राहकों की संख्या में इज़ाफ़े का सीधा मतलब है कि पारम्परिक दुकानदारों और व्यापारियों का तबाह होना। यही वजह है कि तमाम दुकानदार और व्यापारी ई-कॉमर्स कम्पनियों के ख़िलाफ़ एकजुट होकर उनपर नकेल कसने के लिए सरकारों पर दबाव बना रहे हैं। लेकिन उनको यह नहीं पता कि पूँजी की गति ही ऐसी होती है कि उसमें छोटी पूँजी को बड़ी पूँजी द्वारा निगला जाना तय होता है।

क़िस्म-क़िस्म के ऑफर देकर जब ऑनलाइन शॉपिंग की कम्पनियाँ ग्राहकों को आकर्षित करने में सफल हो जाती हैं और जब ग्राहक उनकी वेबसाइट के ज़रिये मालों का ऑर्डर कर देते हैं तो उनकी अगली चुनौती होती है कि कम से कम कीमत पर जल्द से जल्द मालों को ग्राहक तक डिलीवर करें। यहाँ से डिलीवरी स्टाफ़ की भूमिका शुरू होती है। अमूमन ऑनलाइन शॉपिंग कम्पनियाँ डिलीवरी स्टाफ़ को सीधे अपनी कम्पनी में भर्ती करने की बजाय ठेके पर ऐसी कम्पनियों से डिलीवरी का काम करवाती हैं जो अपने डिलीवरी स्टाफ़ के ज़रिये कई कम्पनियों के माल को डिलीवर करने के लिए रखते हैं। डिलीवरी करने वाले ये मज़दूर ही ऑनलाइन शॉपिंग के पूरे कारोबार की रीढ़ हैं क्योंकि उन्हीं के ज़रिये माल गोदामों से ग्राहक तक पहुँचता है।

भारत में ट्रैफिक की समस्या और घनी बस्तियाँ व तंग गलियों की बहुतायत होने की वजह से अधिकांश डिलीवरी बाइक से ही होती है। बाइक से डिलीवरी में लागत भी कम आती है और माल जल्दी डिलीवर भी हो जाता है। लेकिन इस तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि डिलीवरी करने वाले मज़दूरों के ऊपर बोझ लगातार बढ़ता जाता है। ये डिलीवरी मज़दूर अपनी पीठ पर प्रतिदिन 40 किलोग्राम तक का बोझ बाँधकर माल को ग्राहकों तक डिलीवर करने के लिए दिन भर बाइक से भागते रहते हैं। मध्यवर्ग के कई अपार्टमेंटों में तो इन डिलीवरी मज़दूरों को लिफ्ट इस्तेमाल करने तक की इजाज़त नहीं होती जिसकी वजह से उन्हें भारी-भरकम बोझ लिए सीढ़ियों से ऊपर की मंजिलों पर चढ़ना-उतरना होता है। इस कमरतोड़ मेहनत का नतीजा यह होता है कि वे अमूमन कुछ ही महीनों के भीतर पीठ दर्द, गर्दन दर्द, स्लिप डिस्क, स्पॉन्डिलाइटिस जैसी बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं। दिल्ली के सफ़दरजंग अस्पताल के स्पोर्ट्स इंजरी सेन्टर के डॉक्टर बताते हैं कि उनके पास आने वाले मरीज़ों में रोज़ दो-तीन मरीज़ ऐसे होते हैं जो किसी न किसी ऑनलाइन शॉपिंग कम्पनी के लिए डिलीवरी मज़दूर का काम करते हैं। चूँकि अधिकांश डिलीवरी मज़दूर ठेके पर काम करते हैं इसलिए उन्हें कोई स्वास्थ्य सुविधाएँ भी नहीं मिलती। यही नहीं माल को ग्राहकों तक पहुँचाने की जल्दबाजी में बाइक चलाने से उनके साथ दुर्घटना होने की संभावना भी बढ़ जाती है। दुर्घटना होने की सूरत में भी इन डिलीवरी मज़दूरों को ऑनलाइन शॉपिंग कम्पनियों की ओर से न तो दवा-इलाज का खर्च मिलता है और न ही कोई मुआवजा।

अपने निर्मम शोषण से तंग आकर अभी हाल ही में मुम्बई में फ्लिपकार्ट और मिंत्रा जैसी ई-कॉमर्स कम्पनियों के लिए डिलीवरी मज़दूर मुहैया कराने वाली कम्पनी ई-कार्ट के लगभग 400 डिलीवरी मज़दूरों ने हड़ताल पर जाने का फैसला किया। हड़ताली डिलीवरी मज़दूरों का कहना है कि हाड़तोड़ मेहनत और जोखिम भरा काम करने के बावजूद उन्हें बहुत कम तनख़्वाह मिलती है। उनमें से एक का कहना है, ''मैंने वर्ष 2011 में 7,200 रुपये प्रतिमाह की तनख्वाह पर काम करना शुरू किया था और आज तक मेरी तनख्वाह में 3000 रुपये तक की बढ़ोतरी नहीं हुई है। काम पर रखते समय हमें बताया गया था कि हमें प्रतिदिन 30-40 डिलीवरी करनी होगी। लेकिन जब हमने काम शुरू किया तो पाया कि हमें प्रतिदिन 60-70 डिलीवरी करनी होगी।'' इन डिलीवरी मज़दूरों को सुबह 7 बजे काम पर हाजिरी देनी होती है और काम के घण्टों की कोई सीमा नहीं होती। न ही दिन में इन्हें आराम करने और ठीक से भोजन करने की फुर्सत मिलती है। यहाँ तक कि उनके दफ़्तरों में साफ़ शौचालयों तक की व्यवस्था नहीं होती। उनके लिए छुट्टियों का कोई मतलब नहीं होता है। त्योहारों के समय तो उनके ऊपर बोझ और बढ़ जाता है क्योंकि उस समय ई-कॉमर्स कम्पनियाँ ग्राहकों को रिझाने के लिए नये-नवेल ऑफर लेकर आती हैं जिनकी वजह से ऑर्डर की संख्या में ज़बर्दस्त इज़ाफ़ा होता है।

ऐसे में मुम्बई में डिलीवरी मज़दूरों का अपने शोषण के ख़िलाफ़ एवं अपने अधिकारों को लेकर आवाज़ उठाना एक सकारात्मक क़दम है। परन्तु ग़ौर करने वाली बात यह है कि ये हड़ताली मज़दूर फ़ासिस्ट गिरोह महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के नियंत्रण में हैं जो शिवसेना से अलग हुआ संगठन है। मुम्बई के मज़दूर आन्दोलन के इतिहास से परिचित हर कोई यह जानता है कि शिवसेना के फ़ासिस्ट गिरोह ने मुम्बई के टेक्सटाइल मज़दूरों के जुझारू आन्दोलन की कमर तोड़ने में पूँजीपतियों के सुपारी किलर की भूमिका निभायी थी। आज भी इस क़िस्म के फ़ासिस्ट संगठन मालिकों से दलाली खाने के लिए मज़दूरों को संगठित करते हैं और इस प्रक्रिया में मज़दूर आन्दोलन की नींव को कमज़ोर करते हैं। ऐसे में डिलीवरी मज़दूरों के बीच इस मनसे जैसे फ़ासिस्ट संगठन की पैठ बनना मज़दूर आन्दोलन के लिए चिन्ता का सबब है। आज हर सेक्टर के मज़दूरों को हर क़िस्म के मज़दूर-विरोधी और मालिकपरस्त संगठनों के चंगुल से बाहर निकलकर क्रान्तिकारी ट्रेड-यूनियनें बनानी होंगी और इस प्रक्रिया में न सिर्फ़ अपने रोज़-मर्रा के शोषण के ख़िलाफ़ लड़ना सीखना होगा बल्कि व्यवस्था-परिवर्तन की दूरगामी लड़ाई के लिए भी अपने आपको आज से ही तैयार करना होगा।

– आनन्द सिंह

धौलेड़ा क्रेशर ज़ोन हादसा : 12 निर्माण मज़दूरों की मौत का ज़िम्मेदार कौन?

गत 7 अगस्त के दिन हरियाणा के नारनौल जिले के गाँव धौलेड़ा में क्रेशर की दीवार गिरने से 12 मज़दूरों की मौत हो गयी और 40 से अधिक घायल हो गये। दुर्घटना के बाद पता चला कि उक्त क्रेशर जोन का निर्माण उचित लाइसेंस व अनुमति के बिना ही कराया जा रहा था। काम पर लगे मज़दूरों को कोई भी सुरक्षा का उपकरण मुहैया नहीं कराया गया था। इस हादसे की जिम्मेदार एक तो सीधे-सीधे क्रेशर मालिक की मुनाफा कमाने की हवस थी क्योंकि न तो दीवार में लगायी गयी सामग्री का अनुपात सही था और न ही मज़दूरों की सुरक्षा का कोई इन्तज़ाम किया गया था। बेशर्मी का आलम देखिये कि इस भयानक हादसे के बाद मालिक तुरन्त भाग खड़ा हुआ।

मज़दूरों में प्रवासी मज़दूर भी थे जिनमें ज्यादातर राजस्थान के थे। घायलों को रोहतक पीजीआई में भेज दिया गया था। किन्तु यहाँ से भी पूरा इलाज न करके बीच में ही गम्भीर हालत के दौरान ही मज़दूरों को टरकाने की कोशिश की गयी। इस हादसे के पीछे प्रशासन की भूमिका से भी नकारा नहीं जा सकता। प्रशासन की मूक सहमति के बिना इलाके में इस तरह का निर्माण कार्य कैसे शुरू हो सकता है? भवन निर्माण मज़दूरों के साथ इस तरह के हादसे लगातार होते रहते हैं। पहली बात तो सुरक्षा के उपकरण आमतौर पर उपलब्ध ही नहीं कराये जाते। न ही मालिक या प्रशासन इन मज़दूरों के प्रति अपनी जवबदेही ही समझते। भवन निर्माण मज़दूरों के बिखरे होने का फायदा मालिक और प्रशासन दोनों ही उठाते हैं। हादसों के बाद न तो उचित मुआवज़ा दिया जाता है और न ही घायल को उचित इलाज ही मुहैया कराया जाता है। गम्भीर हादसे के बाद श्रमिक सदैव के लिए अपाहिज बेशक हो जाये किन्तु इससे मालिक की सेहत पर क्या असर होने वाला होता है। धौलेड़ा के हादसे की ज़िम्मेदारी से मालिक और प्रशासन बच नहीं सकते। इस तरह की घटनाओं से बचने के लिए भवन निर्माण मज़दूरों को अपनी व्यापक एकजुटता बनानी पड़ेगी ताकि अपने हक़-अधिकारों को लड़कर हासिल किया जा सके साथ ही हमें मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था के चरित्र को भी समझना पड़ेगा जिसके लिए हम मज़दूरों के जीवन का कोई महत्व नहीं है।

– हरियाणा संवाददाता

कब तक अन्धविश्वास की बलि चढ़ती रहेंगी महिलाएँ

बीती 7 अगस्त की रात को झारखण्ड के कांझिया माराएतोली गाँव में पाँच महिलाओं को डायन घोषित कर और उन्हें निर्वस्त्र करके बर्बर तरीके से मार दिया गया। गाँव वालों का आरोप था कि ये पाँचों महिलाएँ बच्चों पर काला जादू करती थीं जिससे या तो बच्चे बीमार हो जाते या उनकी मौत हो जाती। हाल ही में गाँव में एक 18 वर्षीय लड़के की मौत के लिए भी इन्हीं पाँच महिलाओं को ज़िम्मेदार ठहराया गया और उसके बाद उनकी हत्या कर दी गयी। सात अगस्त की रात को करीब 100 गाँव वाले हथियार लेकर जबरन इन पाँचों महिलाओं के घरों में घुसे, उन्हें घसीटकर मैदान में ले गए। वहाँ पंचायत बुलाकर उन्हें निर्वस्त्र करके चाकूओं, लाठियों और पत्थरों से तब तक मारते रहे जब तक उन पाँचों महिलाओं की मौत नहीं हो गई। मौत का यह तांडव पाँच घण्टों तक अनवरत जारी रहा। मृतकाओं के परिवार वालों ने पुलिस को बुलाया पर उस दौरान बिना कोई कार्रवाई किये वह वापिस चली गयी।

इस तरह की घटना न तो पहली है न ही आख़िरी। ग़ौरतलब है कि राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार वर्ष 2008-2013 के बीच इसी तरह डायन घोषित करके झारखण्ड में 220 महिलाओं, उड़ीसा में 177 महिलाओं, आंध्रप्रदेश में 143 महिलाओं और हरियाणा में 117 महलाओं को मौत के घाट उतार दिया गया। इस दौरान पूरे देश में ऐसी 2,257 हत्याओं को अंजाम दिया गया। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि यह आँकड़े संपूर्ण वास्तविक तस्वीर को बयान नहीं करते क्योंकि अधिकतर मामले या तो पीड़ित परिवार वाले गुनाहगारों के डर से दर्ज नहीं कराते या फिर पुलिसवाले मामले को दर्ज करने में आनाकानी करते हैं।

अक़्सर इस बर्बर कुप्रथा का दंश अकेली रह रही विधवा महिलाओं को झेलना पड़ता है। डायन घोषित करके उन्हें बर्बर तरीके से प्रताड़ित और अपमानित किया जाता है। निर्वस्त्र करना, सिर मुंडवाना, दाँत तोड़ना, मल-मूत्र खाने और जानवरों का खून पीने को बाध्य किया जाना, जान से मार डालना तो इस बर्बरता के कुछ उदाहरण मात्र है। जिन महिलाओं को मारा नहीं जाता उन्हें गाँव से बेदखल कर जीवन के बुनियादी संसाधनों तक से वंचित करके नए इलाकों में रहने के लिए बाध्य कर दिया जाता है। वैसे तो कहने के लिए कई राज्यों (झारखंड, छतीसगढ़, बिहार, उड़ीसा और राजस्थान) में डायन कुप्रथा के ख़िलाफ़ कानून भी मौजूद है पर किताबों की शोभा बढ़ाने के अलावा उनके अस्तित्व का कोई महत्व नहीं है।

ग़ौर करने लायक तथ्य यह है कि अधिकांश मामलों में इस निरंकुश कुप्रथा की आड़ में ज़मीन हथियाने और ज़मीन संबंधी विवादों को कानूनेतर तरीकों से सुलटाने के इरादों को अंजाम दिया जाता है। अक़्सर जब किसी परिवार में पति की मृत्यु के बाद ज़मीन का मालिकाना उसकी स्त्री को हस्तांतरित होता है तब नाते-रिश्तेदार ज़मीन को हथियाने के लिए इस बर्बर कुप्रथा का सहारा लेते हैं। विधवा महिला को डायन घोषित करके तमाम प्रकोपों, आपदाओं-विपदाओं, दुर्घटनाओं, बीमारियों के लिए ज़िम्मेदार ठहराकर उसकी सामूहिक हत्या कर दी जाती है और इस तरह ज़मीन हथियाने के उनके इरादे पूरे हो जाते हैं। चूँकि भारतीय जनमानस में भी यह अंधविश्वास, कि उनके दुखों और तकलीफ़ों के लिए डायनों द्वारा किया गया काला जादू ज़िम्मेदार है, गहरे तक जड़ जमाये हुए है इसलिए वह डायन घोषित की गई महिलाओं की हत्या को न्यायसंगत ठहराने के साथ ही साथ इन क्रूरतम हत्याओं को अंजाम दिए जाने की बर्बर प्रक्रिया में भी शामिल होता है। निजी संपत्ति पर अधिकार जमाने की भूख को इस बर्बर निरंकुश स्त्री विरोधी कुकर्म से शांत किया जाता है।

प्रश्न तो यह उठता है कि आख़िर वे कौन से कारण हैं जिनके चलते हम इस आदिम कुप्रथा को आधुनिक युग में भी ढ़ोते चले जा रहे हैं। भारतीय पूँजीवाद पश्चिमी यूरापीय पूँजीवाद की तरह पुनर्जागरण-प्रबोधन-क्रांति की प्रक्रिया से होकर नहीं गुज़रा। पश्चिमी पूँजीवादी समाजों में क्रांतियों ने समाज में मौजूद तमाम पिछड़े, पुरातनपंथी मूल्यों को रैडीकल तरीके से समाज की जड़ों से उखाड़कर उनके स्थान पर तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की पताका को लहराने का काम किया। यह बात और है कि आज का पश्चिमी पूँजीवाद भी बीमार और ह्रासमान है और अपनी सारी प्रगतिशीलता खो चुका है, हालाँकि इसमें कोई संदेह नहीं कि एक समय पश्चिमी पूँजीवाद तर्क, विज्ञान, जनवाद, के शानदार मूल्यों का वाहक था। भारतीय समाज इन क्रांतियों की उथल-पुथल से सर्वथा वंचित रह गया। ऐसा इसलिए हुआ कि प्राक्-औपनिवेशिक भारत में स्वतंत्र पूँजीवादी विकास की जो संभावनाएँ मौजूद थी उसे ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने बाधित कर दिया। भारतीय पूँजीवाद उपनिवेशवाद के गर्भ से पैदा हुआ विकलांग और बौना पूँजीवाद है जिसने अपने अनुरूप संस्कृति निर्मित की है। भारतीय पूँजीवाद ने शताब्दियों से चले आ रहे तमाम निरंकुश, स्त्री विरोधी सड़े-गले मूल्यों, अंधविश्वास आदि को ध्वस्त करने के बजाय अपना लिया और नए के नाम पर जो कुछ स्थापित किया वह भी निरंकुश ही था। यह तमाम पुरातनपंथी मूल्य समाज के पोर-पोर में इस तरह रचे बसे है कि आज भी भारतीय जन जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, झाड़-फूँक जैसे तमाम अंधविश्वासों में यकीन करता है। प्राकृतिक एवं सामाजिक परिघटनाओं के प्रति वैज्ञानिक नज़रिये का अभाव उन्हें अंधविश्वास की शरण में ले जाता है।

यहाँ हमें यह भी समझना होगा कि आज पूँजीवाद बड़े पैमाने पर निजीकरण का पाटा चलाकर जनता से उसकी बुनियादी सुविधाओं (स्वास्थ्य, शिक्षा, रोज़गार आदि) को लगातार छीनकर उसे हाशिये पर धकेलने का काम कर रहा है। दरअसल सच्चाई तो यह है कि पूँजी की गति ऐसी ही है कि वह करोड़ो मेहनतकशों को दरिद्रता और तकलीफ़ों के सागर में डुबाकर ही खुद फलती फूलती है। तर्क के अभाव में जनता अपनी विपन्नता के लिए पूँजीवाद को ज़िम्मेदार ठहराने की जगह अलौकिक शक्तियों और भूत-प्रेत, अपने ''पिछले जन्म'' के कर्म इत्यादि को ज़िम्मेदार ठहराती हैं और इन्हें शांत करने के लिए जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, ओझा और किस्म-किस्म के बाबाओं का सहारा लेती है। यह अनायास नहीं है कि पूँजीवाद जनता की इसी अज्ञानता का फ़ायदा उठाकर आज अंधविश्वास को बढ़ावा देने की कवायदों में लगा है और उसने इसे एक संगठित उद्योग में बदल दिया है। कुकुरमुत्तों की तरह फैले सैंकड़ों बाबा, ओझा-सोखा और तथाकथित चमत्कारी लॉकेटों के व्यापारी इसका जीता जागता प्रमाण हैं। जनता का अंधविश्वास के भंवर में कैद रहना पूँजीवाद के लिए वरदान और जनता के लिए अभिशाप है।

– श्वेता

तर्कवादी चिन्तक कलबुर्गी की हत्या – धार्मिक कट्टरपंथी ताकतों की एक और कायरतापूर्ण हरकत

30 अगस्त, 2015 की सुबह प्रसिद्ध कन्नड़ साहित्यकार, तर्कवादी चिन्तक, शोधकर्ता और लेखक, अस्सी वर्षीय प्रोफेसर एम. एम. कलबुर्गी की कट्टरपंथी हिन्दुत्ववादी फासिस्टों द्वारा हत्या कर दी गई। कर्नाटक सहित देश भर में सामाजिक कार्यकर्ताओं, छात्रों, शिक्षकों, बुद्धिजीवियों और व कई सामाजिक व जनवादी संगठनों से भारी संख्या में लोगों ने हिन्दुत्ववादी फासिस्टों के इस कायरतापूर्ण कुकृत्य के विरुद्ध रोष और विरोध प्रदर्शन किया। बेंगलुरु में प्रसिद्ध कलाकार गिरीश कर्नाड सहित कला एवं संस्कृति जगत के कई जाने माने व्यक्तियों ने इस घटना के विरोध मार्च में हिस्सा लिया। धारवाड़ व हम्पी विश्वविद्यालय में छात्रों ने जबरदस्त रोष व्यक्त करते हुए हत्यारों को जल्द से जल्द पकड़ने की मांग की। मंगलुरु में भी इस हत्या से स्तब्ध शिक्षकों, छात्रों व अकादमिक तबके के लोगों ने कलबुर्गी को याद किया व श्रद्धांजलि दी। दिल्ली के जंतर मंतर में इस घटना के विरोध में सभा बुलाई गई जिसमें विभिन्न प्रगतिशील, वामपंथी व जनवादी

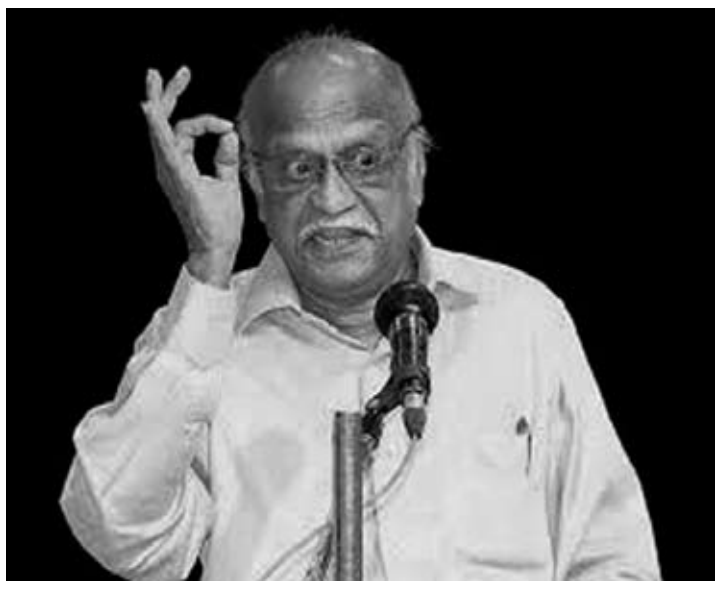

सगठना न हिस्सा लिया। इसक अलावा मुंबई, चेन्नई, हैदराबाद, इलाहाबाद, लखनऊ, गोरखपुर, पटना, वाराणसी, कोलकाता सहित विभिन्न जगहों पर इस कायरतापूर्ण कृत्य के विरोध में प्रदर्शन हुए।

प्रसिद्ध साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हो चुके प्रोफेसर कलबुर्गी धारवाड़ स्थिति कर्नाटक विश्वविद्यालय में कन्नड़ विभाग के विभागाध्यक्ष रहे व बाद में हम्पी स्थित कन्नड़ विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। एक मुखर बुद्धिजीवी और तर्कवादी क रूप म कलबुगा का जावन धार्मिक कुरीतियों, अन्धविश्वास, जाति-प्रथा, आडम्बरों और सड़ी-गली पुरानी मान्यताओं और परम्पराओं के विरुद्ध बहादुराना संघर्ष की मिसाल रहा। इस दौरान कट्टरपंथी संगठनों की तरफ से उन्हें लगातार धमकियों और हमलों का सामना करना पड़ा पर इन धमकियों और हमलों को मुंह चिढ़ाते हुए कलबुर्गी अपने शोध-कार्य और उसके प्रचार-प्रसार में सदा मग्न रहे। प्रोफेसर कलबुर्गी एक ऐसे शोधकर्ता और इतिहासकार थे जिनकी इतिहास के अध्ययन, शोध और उद्देश्य को लेकर समझ यथास्थितिवाद के विरुद्ध निरंतर संघर्ष करती थी। साथ ही कलबुर्गी अपने शोध कार्यों को अकादमिक गलियारों से बाहर नाटक, कहानियों, बहस-मुहाबसों के रूप में व्यवहार में लाने को हमेशा तत्पर रहते थे और यथास्थितिवाद के संरक्षकों, धार्मिक कट्टरपंथियों को उनकी यही बात सबसे ज्यादा असहज करती थी और इसीलिए उनकी कायरतापूर्ण हत्या कर दी गई। खुद कलबुर्गी के शब्दों में:

"ऐतिहासिक तथ्यों पर दो तरह के शोध-कार्य होते हैं। एक वह होता है जो सत्य की खोज पर समाप्त हो जाता है, दूसरा उसके आगे जाकर वर्तमान का पथ-प्रदर्शक बनता है... जहाँ पहले किस्म का शोध कार्य महज अकादमिक होता है, वहीं दूसरे वाले में वर्तमान का मार्ग-दर्शन होता है। वक्त का तकाजा है कि इन दूसरे किस्म के शोध कार्यों पर ज़ोर दिया जाए जो इतिहास से मिलने वाली सीख की रौशनी में वर्तमान के सवालों से रूबरू होते हैं।"

प्रोफेसर कलबुर्गी ने पुरातत्व विभाग की खुदाई में मिली प्राचीन कन्नड़ सूक्तियों, पुरालेखों और शिलालेखों के अनुवाद और विवेचन में अद्वितीय योगदान दिया। ग्यारहवीं और बारहवीं सदी में विकसित 'वाचन साहित्य' का उन्होंने गहन अध्ययन किया और अनेक शोधपत्र प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन पश्चिमी चालुक्य साम्राज्य के दौर की सामाजिक और आर्थिक परिस्थियों की भी व्याख्या की। उस दौर के प्रसिद्ध तर्कवादी संत बसव द्वारा रचित सूक्तियों को उन्होंने अपने शोध की धुरी बनाया और उसी के आधार पर खुदाई में पाये गये शिलालेखों का आधुनिक कन्नड़ में अनुवाद किया और फिर 22 अन्य भाषाओं में अनुवाद कराया। कलबुर्गी ने अपने जीवनकाल में 103 पुस्तकें लिखीं और 400 से अधिक शोधपत्र प्रस्तुत किये। कलबुर्गी को उनकी 'मार्ग' पुस्तक श्रृंखला के लिए जाना जाता है और मार्ग – 4 के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाज़ा गया। 12वीं सदी के तर्कवादी संत बसवेश्वर ने कलबुर्गी के शोधकार्यों को तो

(पेज 7 पर जारी)

गिरती इमारतों से हर वर्ष होती सैकड़ों मौतें : जिम्मेदार कौन?

पिछली 4 अगस्त को महाराष्ट्र के ठाणे जिले में भारी बरसात के कारण एक पुरानी इमारत के गिरने से 11 लोगों की मौत हो गयी व 7 अन्य घायल हो गये। इस घटना के एक सप्ताह पूर्व ही मुम्बई के ठाकुर्ली इलाके में भारी बरसात के कारण एक तीन मंजिला इमारत के गिरने से 9 लोगों की मौत हो गयी थी। इस तरह की घटनाएं मुम्बई जैसे शहरों में आमतौर पर होती रही हैं। मुम्बई में केवल 2008 से 2012 के बीच 100 से ज्यादा इमारतों के ढहने की घटनाएं दर्ज है। साल 2013 में बरसात के मौसम में अप्रैल से जून महीने के अन्दर इमारतों के ढहने से 100 से ज्यादा लोगों की मौते हुई। इसके अतिरिक्त 4 अप्रैल 2013 को एक निर्माणाधीन इमारत के गिरने से 74 लोगों की मौत हो गयी जिसमें ज़्यादातर इमारत में काम करने वाले मजदूर और उनके परिजन थे। पिछले साल तमिलनाडु में भी एक 11 मंजिला इमारत भारी बरसात के कारण ढह गयी थी जिसमें 61 लोग मारे गये थे। राजधानी दिल्ली के लक्ष्मीनगर में इमारत गिरने से उसमें रहने वाले 100 से ज़्यादा लोग मारे गये थे। इस तरह की घटनाओं की एक लम्बी सूची है।

व्यापक स्तर पर देखा जाय तो मुख्यत: दो तरह की घटनाएं सामने आती हैं। एक तरफ तो ऐसी घटनाएं हैं जिनमें पुराने मकान भारी बरसात या अपनी जर्जर अवस्था के कारण गिर जाते हैं तो वहीं दूसरी तरफ खराब बिल्डिंग मैटेरियल और निर्माण के गलत व असुरक्षित तरीकों के कारण निर्माणाधीन या नयी इमारतों के गिरने की घटनाएं होती हैं। दोनों ही प्रकार की घटनाएं हर साल सैंकड़ों लोगों की जिन्दगी निगल जाती हैं और साथ ही सरकार की सक्रियता व जिम्मेदारी पर सवाल खड़े कर जाती हैं।

अकेले मुम्बई में करीब 14000 इमारतें ऐसी हैं जो 70 साल से भी ज्यादा पुरानी हैं। इनमें से 900 से ज्यादा इमारतें अत्यधिक ख़तरनाक स्थिति में हैं। सवाल उठता है कि इनमें लोग रहते क्यों हैं? क्या ये लोग जानते नहीं हैं कि इन इमारतों में रहना कितना खतरनाक है? ज़ाहिर है उन लोगों से अधिक इन इमारतों में रहने के खतरे को कोई नहीं जानता जिनके सिर पर चौबीसों घण्टे यह खतरा मँडराता रहता है।

बी.बी.सी. की रिपोर्ट के मुताबिक मुम्बई एशिया के सबसे महंगे घरों और महंगे रिहायशी किराये वाले शहरों में से एक है। ब्लूमबर्ग विश्लेषण 2012 के अनुसार एक औसत भारतीय नागरिक को मुम्बई में एक अच्छा सुविधासम्पन्न फ्लैट लेने के लिए 300 सालों तक काम करना पड़ेगा। इस प्रकार मध्यवर्ग का एक बड़ा हिस्सा भी मुम्बई में घर खरीदने में असमर्थ होता है। मकानों के किराये भी इतने अधिक हैं कि एक परिवार के रहने के लिए दो कमरे का फ्लैट भी 12 हजार से 20 हजार तक मिलता है जिसके साथ एक से दो लाख तक की अमानत राशि (पगड़ी) भी जमा करानी पड़ती है। इस तरह एक कम आय वाले व्यक्ति या परिवार के लिये घर खरीदना या किराये पर लेना सपने की बात बन जाती है। लोगों को झुग्गियों या चालों में रहना पड़ता है। गौर करने वाली बात है कि मुम्बई की 60 प्रतिशत जनसंख्या झुग्गियों और चालों में रहती है जबकि दूसरी तरफ मुम्बई में 5 लाख से ज्यादा नये फ्लैट अमीर ग्राहकों का इन्तजार कर रहे हैं और अखबारों के पन्ने विज्ञापनों से रंगे जा रहे हैं।

इन परिस्थितियों के कारण पुराने जर्जर घरों में रहने वाले लोग वहीं रहने के लिये मजबूर होते हैं। मकान मालिक ऐसे घरों की मरम्मत भी नहीं कराते जिससे ख़तरा और बढ़ जाता है। जो लोग खुद के घरों में रहते हैं वे इसलिये भी घर छोड़ नहीं पाते कि पुनर्विकास या पुनर्वासन न होने की स्थिति में उनकी जमीन के भी छिन जाने का खतरा रहता है जिससे वे बिल्कुल ही बेघर हो जायेंगे। ठाणे में 4 अगस्त को हुई घटना में भी ऐसा ही कुछ हुआ था। महानगर पालिका के द्वारा ख़तरनाक इमारत चिन्हित किये जाने के बाद भी लोगों ने यही कहा कि हमारे पास कहीं और जाने का विकल्प नहीं है।

ऐसे समय में नगरपालिका या सरकार की यह जिम्मेदारी बनती है कि जब तक इन इमारतों का पुनर्विकास अथवा पुनर्निर्माण नहीं हो जाता तब तक लोगों के रहने का इन्तजाम ट्रांजिट कैम्प या फिर किसी दूसरी जगह करे, पर नगरपालिका महज कागज का एक नोटिस भेजकर या बिना भेजे ही सारी जिम्मेदारियों से पल्ला झाड़ लेती है। परिणाम होता है सैकड़ों लोगों की मौत।

अब दूसरे प्रकार की घटना पर आते हैं। महंगे घरों को खरीदने में असमर्थ लोग अखबारों के सस्ते घरों के विज्ञापनों में फंस जाते हैं। ये सस्ते घर कैसे होते हैं? सस्ते घर वास्तव में छोटे ठेकेदारों द्वारा बनाये गये अवैध घर होते हैं। इनको बनाने में किसी भी मानदण्ड का प्रयोग नहीं किया जाता, सबसे घटिया निर्माण सामग्री इस्तेमाल की जाती है तथा किसी भी सुरक्षा मानक का ध्यान नहीं रखा जाता। पुलिस और नगरनिगम की इसमें बस इतनी सी भूमिका रहती है कि वे ठेकेदारों से पैसे खाकर अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं। ऐसे घर किस पैमाने पर बनते हैं इसका अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि महाराष्ट्र सरकार के अनुसार 2010 में केवल ठाणे जिले में 5 लाख अवैध इमारतें या घर थे। कई बार तो ऐसे घर निर्माण के दौरान ही गिर जाते हैं जिससे सैकड़ों मज़दूर अपनी जान गँवा बैठते हैं।

इस तरह के सस्ते घरों को बेचने के लिये अखबारों, लोकल ट्रेनों और टी.वी. चैनलों को विज्ञापनों से पाट दिया जाता है। कम आय वाल लोग इनकी तरफ आकर्षित हो जाते हैं और इनके जाल में फँस जाते हैं। घर में रहने के पहले दिन से ही पानी टपकने, सीलन, रंग उखड़ने और प्लास्टर गिरने की शुरुआत हो जाती है। अच्छी निर्माण सामग्री इस्तेमाल न होने और कमजोर बनावट के चलते ऐसे मकान भारी बारिश में ढह जाते हैं। निर्माण के मानदण्डों के मुताबिक कोई भी मकान बनवाने पर ढाँचा इस तरीके से बनाया जाता है कि अगर घर किसी वजह से गिरता भी है तो उसमें रहने वाले लोगों को सुरक्षित निकलने का पर्याप्त अवसर तथा पर्याप्त निकास मिल सके। गलत तरीके से बनाये गये घर बिना मौका दिये अचानक गिरते हैं जिससे ज्यादा लोगों की मौतें होती हैं। इस प्रकार सैकड़ों लोग ठेकेदारों और बिल्डरों के मुनाफे की हवस का शिकार बन जाते हैं। घर गिरने के बाद अगर कभी ठेकेदार पकड़े भी जाते हैं तो मामला ठण्डा पड़ने पर कुछ ही समय में पैसे के बल पर छूट भी जाते हैं।

यह सोचने वाली बात है कि ऐसे समय में जब तकनीक इस स्तर पर पहुँच चुकी है कि भूकम्परोधी और अन्य आपदाओं से बचने वाले घर बनाये जा सकते हैं तब भी सैकड़ों घर कुछ लोगों के मुनाफ़े की वजह से बारिश भी नहीं झेल पाते! ऐसे समय में जब उच्च तकनीक का इस्तेमाल करके हर परिवार को एक अच्छा घर और सुविधाएं प्रदान की जा सकती हैं तब भी लोग ऐसे घरों में रहने के लिए मजबूर हैं जो किसी भी दिन उनकी मौत का कारण बन सकते हैं!

– नितेश शुक्ला

वे सोचते हैं कि मेरे पार्थिव शरीर को नष्ट करके वे इस देश में सुरक्षित रह जायेंगे। यह उनकी भूल है। वे मुझे मार सकते हैं, लेकिन मेरे विचारों को नहीं मार सकते। वे मेरे शरीर को कुचल सकते हैं, लेकिन मेरी भावनाओं को नहीं कुचल सकेंगे। ब्रिटिश हुकूमत के सिर पर मेरे विचार उस समय तक एक अभिशाप की तरह मँडराते रहेंगे जब तक वे यहाँ से भागने के लिए मजबूर न हो जायें।"

– शहीदेआज़म भगतसिंह

(पेज 6 से आगे)

प्रभावित किया ही, साथ ही उनके द्वारा रचित कई नाटकों का केंद्रबिंदु भी रहे जिनके माध्यम से कलबुर्गी ने मूर्तिपूजा, जातिवाद, काल्पनिक ईश्वर की अवधारणा, पुरानी सड़ी-गली परम्पराओं, धर्म और उसके पाखंडी एजेंटों पर जमकर प्रहार किया और स्त्री उत्पीड़न, दलित उत्पीड़न और साम्प्रदायिकता के प्रतिरोध में नाटकों की एक लम्बी कड़ी का सृजन किया।

हिन्दुत्ववादी संगठनों और खासकर दबंग लिंगायत समुदाय के निशाने पर वे मार्ग श्रृंखला की पहली पुस्तक की वजह से आये जब उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि लिंगायत समुदाय व शैव पंथ के संस्थापक संत चन्नाबसव का जन्म दरअसल बसव की बहन नागलम्बिका और एक दलित जाति

के कांव दाहारा कक्कया के विवाह से हुआ था। इस निष्कर्ष को लिंगायत समुदाय ने अपने कथित 'उच्च जाति रक्त' को बदनाम करने की साज़िश के रूप में लिया। ज्ञात हो कि लिंगायत जाति कर्नाटक में बड़े किसानों, ज़मीन्दारों की जाति रही है। इसके अतिरिक्त धार्मिक कट्टरपंथियों द्वारा बहिष्कृत व धार्मिक आडम्बरों पर प्रहार करती यू.आर. अनंतमूर्ति की पुस्तक 'क्यों गलत है नग्न पूजा' की प्रशंसा करने और अपने व्याख्यानों व शोधपत्रों में उस पुस्तक में लिखे हुए तथ्यों का उद्धरण देने की वजह से भी उन्हें विश्व हिन्दू परिषद, राम सेने और बजरंग दल जैसे फासीवादी संगठनों के हमलों का सामना करना पड़ा।

एक शोधकर्ता, अकादमिशियन, शिक्षाविद, तर्कवादी साहित्यकार व बुद्धिजीवी के रूप में उनका जीवन संघर्ष और फासीवादियों द्वारा की गयी उनकी हत्या यह गवाही देती है कि फासीवादी किस चीज़ से सबसे ज़्यादा ख़ौफ़ खाते हैं। वे डरते हैं तर्क से, विज्ञान से, शोध से, सत्य के अन्वेषण से और अन्ततोगत्वा ज्ञान से। यह हत्या तर्कवादियों की हो रही सिलसिलेवार हत्याओं की कड़ी है जिसके शिकार महाराष्ट्र में नरेंद्र दाभोलकर और कॉमरेड गोविन्द पानसरे भी हो चुके हैं। फासीवादियों ने सत्ता में आने के बाद बेखौफ़ होकर अब हत्याओं का सिलसिला शुरु कर दिया है। उनकी निर्भयता का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कलबुर्गी की हत्या के दिन ही बजरंग दल मंगलुरु इकाई के संयोजक भुवित शेट्टी ने खुलेआम ट्विटर पर इस हत्या का स्वागत करते हुए लगे हाथ एक और तर्कवादी साहित्यकार के.एस. भगवान को भी जान से मारने की धमकी दे डाली। खुद को संसद-विधानसभा में भगवा गिरोह का विपक्ष कहने वाली कांग्रेस ने न सिर्फ हिंदुत्व की नई प्रयोगशाला कर्नाटक में धार्मिक फासीवादियों के प्रति नरम रुख अपनाया है बल्कि उन्हें संरक्षण भी दिया है। आज के दौर में जब जनता की जुबान पर ताला लगाने के षडयंत्र पूरे देश में चल रहे हैं उस दौर में अभिव्यक्ति के ख़तरे उठाना और उसकी आज़ादी के लिए जुझारू संघर्ष करना आज के समय की एक मूलभूत मांग है।

– पावेल पराशर

समाजवादी सोवियत संघ ने वेश्यावृत्ति का ख़ात्मा कैसे किया?

वेश्यावृत्ति प्राचीन काल से हमारे समाज में मौजूद रही है। इसकी शुरुआत सामज के वर्गों में बँटने और स्त्रियों की दासता के साथ ही हो गयी थी। लेकिन पूँजीवाद के साथ ही देह व्यापार का यह धन्धा एक व्यापक और संगठित रूप में अस्तित्व में आया। इसने एक खुली आज़ाद मण्डी पैदा की जिसमें कारख़ानों में पैदा हुए माल से लेकर इंसानी रिश्तों और जिस्मों को भी मुनाफे के लिए खरीदा और बेचा जाने लगा। इसके साथ ही कलकत्ता, दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरों से लेकर छोटे शहरों तक में देह व्यापार की मण्डियाँ और उसके साथ ही दुनियाभर में मानव तस्करी का एक व्यापक कारोबार पैदा हुआ।

अकेले भारत में ही लगभग 30 लाख से ज्यादा वेश्याएं हैं। इनमें 12 से 15 साल तक की करीब 35 प्रतिशत लड़कियाँ हैं जो इस अमानवीय धन्धे में फँसी हुई हैं। हर साल लाखों औरतों और लड़कियों की एक जगह से दूसरी जगह तस्करी की जाती है और जबरन इस धन्धे में धकेला जाता है। इस व्यवस्था की तरफ से भी इस समस्या से निपटने के लिए कोशिशें की जाती रही हैं और बहुत से एन.जी.ओ. और समाजसेवी संस्थाएँ भी इसको लेकर काम कर रही हैं। लेकिन इन सबका असली मकसद इस समस्या के बुनियादी कारणों पर पर्दा डालना ही है। आज इस अमानवीय धन्धे को कानूनी रूप देने की कोशिशें की जा रही हैं जिससे इसके हल का सवाल ही ख़त्म किया जा सके। इस व्यवस्था की जूठन पर पलने वाले तमाम बुद्धिजीवी इसके पक्ष में दलीलें गढ़ रहे हैं और मीडिया द्वारा इन दलीलों को आम राय में बदलने की कोशिशें भी जारी हैं।

बीसवीं सदी के शुरू में अमेरिका व यूरोप के पूँजीवादी देशों में वेश्यावृत्ति के खिलाफ ज़ोरदार मुहिमें चलायी गयी थीं। मगर औरतों की हालत सुधारना इन मुहिमों का मकसद नहीं था, क्योंकि इनके पीछे असली कारण था यौन रोगों का बड़े स्तर पर फैलना। इसलिए ये मुहिमें वेश्यावृत्ति विरोधी न होकर वेश्याओं की विरोधी थीं। इन मुहिमों का विश्लेषण अमेरिकी लेखक डाइसन कार्टर ने अपनी प्रसिद्ध किताब 'पाप और विज्ञान' में काफी विस्तार से किया है। इसके साथ ही रूस में अक्तूबर 1917 की क्रान्ति से पहले और बाद में वेश्यावृत्ति की स्थिति का जिक्र भी इस किताब में किया गया है।

रूस में क्रान्ति से पहले वेश्यावृत्ति

रूस में जारशाही के दौर में वेश्यावृत्ति का एक संगठित ढाँचा मौजूद था। यह पूरा संगठित ढाँचा रूसी बादशाह ज़ार की सरकार की देखरेख में चलाया जाता था। इसे 'पीले टिकट' की व्यवस्था कहा जाता था। जो औरतें वेश्यावृत्ति को पेशे के तौर पर अपनाती थीं, उनको एक पीला टिकट दिया जाता था, लेकिन इसके बदले उनको अपने पासपोर्ट (पहचानपत्र) को त्यागना पड़ता था। इसका मतलब था एक नागरिक के तौर पर अपने सभी अधिकारों को गँवाना। एक बार इस धन्धे में आने के बाद वापसी के सभी दरवाज़े बन्द कर दिये जाते थे। कोई भी औरत वेश्यावृत्ति के अलावा कोई दूसरा काम नहीं कर सकती थी क्योंकि पासपोर्ट के बिना कहीं नौकरी नहीं की जा सकती थी। इसके इलावा इन औरतों की सामाजिक हैसियत भी पूरी तरह ख़त्म कर दी जाती थी। ऐसी औरतों के लिए अलग इलाके बनाये गए थे, जैसे भारत में 'रेड लाइट एरिया' हैं। मतलब कि इन औरतों का अस्तित्व निचले दरजे के जीवों के रूप में था। इस प्रबन्ध को कायम रखने पीछे मकसद था सरकार को इससे हो रही आमदनी। वेश्याओं को अपनी आमदनी का एक हिस्सा जिला प्रमुख या दूसरे सरकारी अफसरों को देना पड़ता था।

क्रान्ति से पहले तक अकेले पीटर्सबर्ग शहर में सरकारी लायसेंसप्राप्त औरतों की संख्या 60,000 थी। 10 में से 8 वेश्याएं 21 साल से कम उम्र की थीं। आधे से ज़्यादा ऐसीं थीं, जिन्होंने 18 साल से पहले ही इस पेशे को अपना लिया था। रूस में नैतिक पतन का यह कीचड़ जहाँ एक तरफ आमदनी का स्रोत था, वहीं दूसरी तरफ यह रूस के कुलीन लोगों के लिए विदेशों से आने वाले लोगों के सामने शर्मिन्दगी का कारण भी बनता था। इसलिए इन कुलीन लोगों ने ज़ार सरकार पर दबाव पाया और ज़ार द्वारा इस मसले पर विचार करने के लिए एक कांग्रेस भी बुलाई गई। इस कांग्रेस में मज़दूर संगठनों द्वारा भी अपने सदस्य भेजे गये। मज़दूर नुमायंदों द्वारा यह बात पूरे जोर-शोर से उठाई गई कि रूस में वेश्यावृत्ति का मुख्य कारण ज़ारशाही का आर्थिक और राजनैतिक ढाँचा है। लेकिन ज़ाहिर है कि ऐसे विचारों को दबा दिया गया। पुलिस अधिकारियों का कहना था कि 'भले घरानों' की औरतें पर प्रभाव न पड़े, इसलिए ज़रूरी है कि 'निचली जमात' की औरतें ज़िन्दगी भर के लिए यह पेशा करती रहें।

अक्तूबर 1917 क्रांति के पश्चात

अकतूबर, 1917 में रूस के मज़दूरों और किसानों ने बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में ज़ारशाही को पलट कर समाजवादी क्रान्ति कर दी। निजी मालिकाने को ख़त्म करके पैदावार के साधनों का समाजीकरण किया गया। इस क्रान्ति का उद्देश्य सिर्फ आर्थिक गुलामी की बेड़ियों को ही तोड़ना नहीं था बल्कि इसने लूट पर आधारित पुरानी व्यवस्था द्वारा पैदा की तमाम सामाजिक बीमारियों (शराबखोरी, वेश्यावृत्ति, औरतों की ग़ुलामी आदि) पर भी चोट की।

सोवियत शासन ने वेश्यावृत्ति के खिलाफ सबसे पहला हमला 1923 में किया। वेश्यावृत्ति की समस्या को पूरी तरह समझने के लिए डाक्टरों, मनोविशेषज्ञों और मजदूर संगठनों के नेताओं द्वारा 1923 में एक प्रश्नावली तैयार की गयी और रूस की हज़ारों औरतों और लड़कियों में बाँटा गया।

इस प्रश्नावली का मकसद उन कारणों और स्थितियों का पता लगाना था, जिसमें एक औरत अपना जिस्म तक बेचने के लिए तैयार हो जाती है। हर स्तर और हर उम्र की अलग-अलग स्त्रियों से इन सवालों के उत्तर लिखित और गोपनीय तरीकों से लिये गये।

इस सर्वेक्षण के बाद जो तथ्य सामने आये वे थे:

– देह व्यापार की सिर्फ वह स्त्री शिकार बनीं, जिनको दूसरे लोगों ने जानबूझ कर बहकाया था। किन लोगों ने? उन लोगों ने नहीं जिन्होंने ने पहले-पहले उनके शरीर का सौदा किया था, बल्कि उन पुरुषों-स्त्रियों ने जो वेश्यावृत्ति के व्यापार से लम्बे-चौड़े मुनाफे कमा रहे थे या वे लोग जो व्यभिचार के अड्डे चलाते थे।

– व्यभिचार इसलिए कायम है क्योंकि भारी संख्या में भूखी-नंगी लड़कियाँ मौजूद हैं, इसलिए कि व्यभिचार का व्यापार करने से करारा मुनाफ़ा हाथ लगता है।

– सोवियत विशेषज्ञों को पता लगा कि ज़्यादातर लड़कियाँ आम तौर पर इतनी गरीब होतीं कि थोड़ी रकम का लालच भी उन को वेश्यावृत्ति की तरफ घसीट ले जाता।

– ज़्यादातर औरतों ने कहा कि यदि उनको कोई अच्छा काम मिले तो वह इस धन्धे को छोड़ देंगी।

इन तथ्यों की रौशनी में सोवियत सरकार ने सबसे पहले 1925 में वेश्यावृत्ति के ख़िलाफ़ एक कानून पास किया। देश की सभी सरकारी संस्थाओं, ट्रेड यूनियनों और स्थानीय संगठनों को निर्देश दिया गया कि वे फौरन ही नीचे लिखे उपायों को अमल में लायें:

(यहाँ हम 'पाप और विज्ञान' किताब से इस कानून सम्बन्धित हवाले दे रहे हैं।)

1. मजदूर संगठनों की मदद से मजदूरों की हथियारबंद सुरक्षा फौज मजदूर स्त्रियों की छँटनी हर हालत में बन्द करे। किसी भी हालत में आत्म-निर्भर, अविवाहित स्त्रियों, गर्भवती स्त्रियों, छोटे बच्चों वाली स्त्रियों और घर से अलग रहने वालों लड़कियों को काम से हटाया नहीं जाये।

2. उस समय फैली हुई बेरोजगारी के आंशिक हल के रूप में स्थानिक सत्ताधारी संस्थाओं को निर्देश दिया गया कि वे सहकारी फैक्टरियाँ और खेती संगठित करें जिससे बेसहारा भूखी-नंगी स्त्रियों को काम पर लगाया जा सके।

3. स्त्रियों को स्कूलों और प्रशिक्षण-केन्द्रों में भरती होने के लिए उत्साहित किया जाये और मजदूर संगठन इस भावना के ख़िलाफ़ कारगर संघर्ष चलायें कि स्त्रियों को मिलों-फैक्टरियों आदि में काम नहीं करना चाहिए।

4. उन स्त्रियों के लिए जिनके पास रहने की 'कोई निश्चित जगह नहीं है', और उन लड़कियों के लिए जो गाँव से शहर में आयी हैं, आवास अधिकारी रिहाइश हेतु सहकारी मकान का प्रबंध करें।

5. बेघर बच्चों और जवान लड़कियों की सुरक्षा के नियम सख़्ती के साथ लागू किये जायें।

6. यौन-रोगों और वेश्यावृत्ति के ख़तरे के ख़िलाफ़ आम लोगों को जागरूक करने के लिए अज्ञानता पर हमला किया जाये। आम लोगों में यह भावना जगायी जाये कि अपने नये जनतंत्र से हम इन रोगों को उखाड़ फेंकें।

ठेकेदारों, वेश्याओं और ग्राहकों के प्रति तीन अलग रवैये

– सोवियत सरकार द्वारा ठेकेदारों और वेश्याघरों के मालिकों (जिन में मकान मालिक और होटलों के मालिक भी शामिल थे) के लिए सख़्त रवैया अपनाने के लिए कहा गया। फौज को हिदायत दी गई कि मनुष्यों का व्यापार करने वालों और वेश्यावृत्ति से लाभ कमाने वाले लोगों को गिरफ्तार कर लिया जाये और कानून मुताबिक सजा दी जाये।

– वेश्यावृत्ति में फँसी औरतों के बारे में लोगों और फौज को चेतावनी दी गयी कि उनके साथ अच्छा बरताव किया जाये। यह भी कहा गया कि छापे के दौरान उनको बराबर को नागरिक समझा जाये। ऐसी भी धारा थी कि इन औरतों को गिरफ्तार न किया जाये। उनको अदालत में सिर्फ ठेकेदारों के ख़िलाफ़ गवाही देने के लिए ही लाया जाता था।

– ग्राहकों के प्रति सामाजिक दबाव की पहुँच अपनायी गयी। ग्राहकों को गिरफ्तार नहीं किया जाता था बल्कि उनका नाम-पता और नौकरी की जगह का पता ले लिया जाता था। फिर बाजार में एक तख़्ता लगा दिया जाता, जिस पर ग्राहकों के नाम और पतों के साथ लिखा जाता था: 'औरतों के शरीर को खरीदने वाला'। ऐसे नामों की सूची सभी बड़ी-बड़ी इमारतों और मिलों-फैक्टरियाँ के बाहर लटकती रहती थी।

सामाजिक पुनर्वास

ऐसी औरतें भी थीं, जिनकी अस्पताल और स्वास्थ्य केन्द्रों में देख-रेख की जा रही थी, जो अपने आप को समाज के अनुकूल नहीं झाल पा रही थीं। इसलिए यह सम्भावना बनी हुई थी कि ऐसी औरतें फिर से देह व्यापार के धन्धे में जा सकतीं हैं। फिर सामाजिक पुनर्वास की एक योजना तैयार की गयी। संक्षेप में में यह योजना इस तरह थी:

1. मरीज़ को तब छुट्टी दी जाती जब समाज के एक हिस्से में उसके रहने का पूरा-पूरा बन्दोबस्त कर लिया जाता। यहाँ उसका अतीत गोपनीय रखा जाता था। इस अतीत के बारे में सिर्फ उन्हीं गिने-चुने लोगों को पता होता था जिनके साथ अस्पताल में रहते हुए अन्तिम कुछ महीनों में मरीज़ ने पत्र-व्यवहार किया था। सामाजिक काम के ये वालंटियर पहले से ही एक ऐसी नौकरी की जगह तजवीज करते रहते थे, जिसके लिए स्त्री-रोगी को खास शिक्षा दी गयी होती थी। ये लोग उसके रहने के लिए किसी परिवार में प्रबन्ध कर देते। इस स्त्री के किसी नये परिवार में आने की हर बारीकी पर बड़ा ध्यान दिया जाता जिससे उसके पिछले जीवन के बारे में किसी को शक न हो सके।

2. गिने-चुने देखभाल करने वालों का दल हर स्त्री को लंबे

(पेज 9 पर जारी)

सँभलो, है लगने वाला ताला ज़ुबान पर!

(पेज 1 से आगे)

अभी पूरे पाँच साल दो, कांग्रेस ने देश को 60 साल तक लूटा है!" पाँच साल तो जब होंगे तब होंगे लेकिन पिछले एक साल में भाजपा ने जो गुल खिलाए हैं वे ही यह दिखाने के लिए काफ़ी हैं कि सरकार के मंसूबे क्या हैं और "अच्छे दिन" किसके लिए आए हैं। महाराष्ट्र में भी मुख्यमंत्री देवेन्द्र फडनवीस को युवा नेता और पता नहीं किन-किन उपाधियों से नवाज़ा गया था। 100 करोड़ से अधिक रुपये उनके शपथ ग्रहण समारोह में ही खर्च कर दिये गये थे और काफ़ी लोगों को उनसे बहुत सी उम्मीदें थीं। लेकिन पिछले एक साल में उन्होंने जो-जो किया है उससे पता चल रहा है कि फडनवीस भी अपने गुरू के ही नक्शे-कदम पर चल रहे हैं।

एक के बाद एक फ़ैसले जो महाराष्ट्र सरकार ले रही है उनसे पता चलता है कि सरकार किसके लिए काम कर रही है और किसकी दुश्मन है। बीफ़ पर प्रतिबन्ध और श्रम कानूनों में फेरबदल तो सरकार काफ़ी पहले ही कर चुकी है, अब सरकार ने 27 अगस्त को एक नया सर्कुलर जारी किया है जिसके तहत किसी को भी सरकार की आलोचना करने पर राजद्रोह का मुकदमा ठोककर जेल में डाला जा सकता है। जैन समुदाय के त्यौहार प्रयूषण पर भी सरकार ने हाल ही में मुम्बई में चार दिनों के लिए और मीरा रोड-भयंदर में आठ दिनों के लिए सभी तरह का मांस (मछली को छोड़कर) बेचने पर पाबन्दी लगाई है।

जो नया सर्कुलर महाराष्ट्र सरकार ने जारी किया है उसके तहत सरकारी अफसरों, नेता-मंत्रियों की आलोचना करने पर आपको भारतीय दण्ड संहिता की धारा 124 ए के अनुसार राजद्रोही क़रार देकर जेलों में ठूँसा जा सकता है। मिसाल के तौर पर अगर आप अब मोदी की हिटलर से तुलना करें, सरकारी अफसरों को भ्रष्ट कहें, नेताओं के कार्टून बनाएं, अखबार-पत्रिकाओं में सरकार को कोसें तो आपको ख़तरनाक अपराधी करार दिया जा सकता है! आपको अपनी जुबान खोलने की क़ीमत तीन साल की जेल से लेकर आजीवन कारावास और साथ में जुर्माना भरने से चुकानी पड़ सकती है। सरकार की किसी लुटेरी नीति का विरोध करने के कारण आपकी नियति बदल सकती है! अभिव्यक्ति की आज़ादी पर ये नया हमला महाराष्ट्र सरकार की जनता को एक और "सौगात" है।

भाजपा सरकार सबका ख़याल रखती है! जैन समुदाय की धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुँचे इसके लिए सरकार ने उनके त्यौहार पर हर तरह के मांस (सिवाय मछली के) बेचने पर पाबन्दी लगाई है। उनका कहना है कि बाज़ारों में दुकानों पर लटकता मांस देखकर उन्हें घिन आती है इसलिए मांस की बिक्री पर पाबन्दी लगाना जरूरी है। सरकार के तर्क से चलें तो मछली की बिक्री पर भी पाबन्दी लगाई जानी थी। आखिर वह भी मांसाहार ही है और किसी को उससे भी घिन आ सकती है। असल में सरकार ने यह पाबन्दी बेहद सोच-समझकर और साम्प्रदायिकता की राजनीति के तहत लगाई है। अधिकतर मांस बेचने के काम में मुस्लिम आबादी ही लगी है और उसी को निशाने पर रखते हुए सरकार ने यह फैसला लिया है। मछली बेचने के काम में मुख्यत: महाराष्ट्र के कोली व आगरी समुदाय लगे हैं। सरकार अपना हिन्दू वोटबैंक खोने का खतरा नहीं उठा सकती इसीलिए मछली पर पाबन्दी नहीं लगाई गयी। सबसे बड़ी बात है कि इस तरह के प्रतिबन्ध का सबसे बड़ा असर ग़रीब मुसलमान आबादी पर पड़ता है। किसी खाद्य पदार्थ की बिक्री पर रोक लगाना और वह भी जब उसके ज़रिये एक बड़ी आबादी की रोज़ी-रोटी चलती हो, यह काम केवल फासीवादी ही कर सकते हैं। मोदी ने चुनावों से पहले लोगों से कहा था कि वो देश को एक मज़बूत सरकार देंगे। सरकार वाकई में बेहद "मज़बूत" है! जहाँ मांस बेचना भी "संगीन अपराध" हो वहाँ की सरकार जरूर ही बेहद "मज़बूत" होगी! अगले साल अगर इस त्यौहार पर धार्मिक भावनाओं का ख़याल रखते हुए प्याज़ और लहसुन बेचने को भी "संगीन अपराध" करार दे दिया जाय तो आश्चर्य नहीं होगा!

भाजपा का कहना था कि वह अपनी "मज़बूती" का प्रदर्शन दाऊद इब्राहिम को पकड़कर करेगी। दाऊद तो पता नहीं कहाँ है लेकिन अभी तक गोविन्द पानसरे और नरेन्द्र दाभोलकर के हत्यारों को भी गिरफ़्तार नहीं किया जा सका है या और भी सटीकता से कहें तो उन्हें शह दी गयी है। दाभोलकर और पानसरे जैसे धार्मिक अन्धविश्वासों और हिन्दुत्ववादियों की विचारधारा को चुनौती देने वालों को कुचलने में भी सरकार ने काफ़ी "मज़बूती" दिखायी है। प्रगतिशील विचारों के ख़िलाफ़ यह "मज़बूती" आगे भी जारी रहेगी; कर्नाटक में प्रोफेसर कलबुर्गी की हत्या इसका नया सबूत है।

भाजपा सरकार अपने जन्म के समय से ही साम्प्रदायिकता की राजनीति करती रही है या यह भी कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता की राजनीति ने ही भाजपा को जन्म दिया है। यह किसी से छिपा नहीं है कि भाजपा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के इशारों पर काम करती है। कट्टर हिन्दुत्ववादी विचारधारा रखने वाला संघ अपने जन्म से ही बहुसंख्यक हिन्दू आबादी के मन में मुसलमानों के ख़िलाफ़ ज़हर घोलता आया है। इतने सालों की "मेहनत" के ज़रिये संघ ने बहुसंख्यक आबादी के बीच मुसलमानों को लेकर अनेकों पूर्वाग्रह पैदा किये हैं, उनके मन में असुरक्षा की भावना और डर पैदा किया है। भाजपा इसी डर का फ़ायदा उठाते हुए सत्ता में आयी है। बीफ़ पर पाबन्दी और अन्य मांस उत्पादों पर पाबन्दी से सरकार पूर्वाग्रहों से ग्रसित बहुसंख्यक आबादी का तुष्टीकरण करके अपनी चमड़ी बचाने में लगी है। दूसरी बात यह है कि संघ की विचारधारा के अनुसार मुसलमानों को देश में दोयम दर्जे का नागरिक बना देना चाहिए, इस विचारधारा को भी सरकार कदम-ब-कदम साथ लेकर चल रही है और इसलिए मुसलमानों पर एक के बाद एक हमलें कर रही है।

इस विचारधारा का वाहक संघ एक फासीवादी संगठन है और फासीवादियों के सबसे बड़े दुश्मन प्रगतिशील विचार होते हैं। इसी लिए सरकार ऐसे क़ानून लाना चाहती है जो लोगों से विरोध करने की आज़ादी छीन लें। ऐसे क़ानूनों का निशाना कौन हो रहे हैं और होगें? ज़ाहिर है अलग-अलग पार्टियों के भ्रष्ट नेता जो एक दूसरे को गालियाँ देते रहते हैं और नंगा-नंगा करते हैं उन्हें इन क़ानूनों से कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा! शिव सैनिकों और ए. बी.वी.पी. के गुण्डों पर भी ये क़ानून लागू नहीं होंगे। इन क़ानूनों का निशाना धार्मिक अल्पसंख्यकों, दलितों, प्रगतिशील विचार रखने वाले बुद्धिजीवियों और कलाकारों तथा सबसे बढ़कर क्रान्तिकारी मज़दूर संगठनों को बनाया जायेगा। मज़दूर आन्दोलनों को और भी बेरहमी से कुचला जाएगा और लोगों की जुबान पर ताले जड़ने के पुख़्ता इन्तज़ाम किये जायेंगे; देश को क़ैदखाने में तब्दील करने की कोशिशें की जायेंगी। ऐसे में हम मज़दूरों को क्या करना चाहिए? क्या हमारे लिए कार्ल मार्क्स की यह बात आज पहले से भी अधिक प्रासंगिक नहीं है? – "मज़दूरों के पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवा कुछ नहीं है। जीतने के लिए उनके सामने सारी दुनिया है। दुनिया के मज़दूरो, एक हो!"

– विराट

समाजवादी सोवियत संघ ने वेश्यावृत्ति का ख़ात्मा कैसे किया?

(पेज 8 से आगे)

समय तक सहायता की गारंटी करता। हमारे देशों में भी जांच-पड़ताल का समय देने का प्रबंध है। लेकिन उससे यह देखभाल बुनियादी तौर पर भिन्न थी। इस देखभाल का आधार था बराबरी के आधार पर व्यक्तिगत दोस्ती। ज़्यादा महत्व इस बात को दिया जाता था कि पुरानी मरीज अपने नये काम धंधे में सफलता प्राप्त करे। कम से कम एक देखभाल करने वाला इस स्त्री के साथ-साथ काम करता था।

3. हर जिले के देखभाल करने वालों के अलग-अलग दल मिलकर सहायता समितियाँ बनाते थे, डाक्टरों, मनो-विशेषज्ञों और फैक्ट्री मैनेजरों से सलाह-मशवरे के लिए इन समितियों की महीने में तीन बार बैठकें होती थीं। किसी भी मरीज़ के मामलो में थोड़ी भी गड़बड़ नजर आने पर विशेषज्ञ और अनुभवी सहायकों से फौरन मदद ली जा सकती थी। जैसे-जैसे समय बीता, पूरी तरह ठीक स्त्रियां इन समितियों के काम को और भी अच्छा बनाने के लिए उनमें शामिल होने लगीं।

4. विवाह, धंधे, तनख्वाह, किराये वगैरह की किसी तरह की कठिनाई में उलझ जाने पर उनकी ज़्यादा हिफ़ाज़त के लिए समितियों ने खास कानूनी मदद का भी प्रबंध कर दिया था।

5. पुरानी मरीजों को इस बात के लिए उत्साहित किया जाता कि जिन स्त्रियों का अब भी अस्पतालों में इलाज हो रहा है उन से निजी पत्र व्यवहार करें। इस का उद्देश्य यह था कि समाज में फिर से दाखिल होने की अस्पताल के मरीजों की इच्छा बढ़े और वह जल्दी ही समाज में फिर से वापस आ सकें।

सोवियत संघ के वेश्यावृत्ति के खिलाफ पंद्रह साल के संघर्ष के बाद:

– अभियान के पहले दौर के पाँच साल के बाद ही, 1928 में, गैर-पेशेवर वेश्यावृत्ति पूरी तरह खत्म हो गयी। 25,000 से ज्यादा पेशेवर स्त्रियां अस्पतालों से निकल कर सम्मानित नागरिक बन गयी थीं। लगभग 3 हजार पेशेवर वेश्याएं अब भी मौजूद थीं।

– 80 प्रतिशत से कुछ कम स्त्रियां अस्पताल से निकलकर उद्योग और खेतों में काम करने के लिए पहुँच चुकी थीं।

– 40 प्रतिशत से अधिक 'शॉक ब्रिगेडों' में काम करने वालों में चली गई या देश के लिए इज्जत वाला काम करके उन्होंने नाम कमाया। ज़्यादातर ने विवाह कर लिया और माँएँ बन गयीं।

डायसन कार्टर के शब्दों में: "इस तरह व्यभिचार के ख़िलाफ़ संघर्ष – जो अब 'गुलामों और पीड़ितों' का संघर्ष बन गया था – सोवियत जीवन से युगों पुराने व्यभिचार के व्यापार को सदा के लिए मिटा देने में सफल रहा। इस संघर्ष ने यौन-रोगों का भी ख़ात्मा कर दिया। रूसी की नयी पीढ़ी ने वेश्या को देखा तक नहीं है।"

रूस में समाजवादी काल के दौरान नशाख़ोरी और वेश्यावृत्ति जैसी समस्याओं के ख़िलाफ़ संघर्ष छेड़ा गया और इनको को ख़त्म करने में सफलता भी मिली। उस दौर में अपनायी गयी नीतियाँ सिर्फ इसलिए ही नहीं सफल हुईं कि ज़ारशाही के बाद कोई ईमानदार सरकार आ गयी थी। इन समस्याओं को ख़त्म करने में सफलता मिलने का असली कारण यह था कि इन बुराइयों की जड़ निजी मालिकाने पर आधारित ढाँचा रूस की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) के नेतृत्व में अक्टूबर, 1917 के क्रान्ति के बाद ख़त्म कर दिया गया था। पैदावार के साधनों का साझा मालिकाना होने के कारण पैदावार भी पूरे समाज की ज़रूरत को सामने रखकर की जाती थी न कि कुछ लोगों के मुनाफे के लिए। इस लिए नयी बनी सोवियत सरकार द्वारा बनायी गयी नीतियाँ भी बहुसंख्यक मेहनतकश जनता को ध्यान में रखकर बनायी जाती थीं न कि मुट्ठीभर लोगों के मुनाफे के लिए।

आज पूँजीवाद ढाँचा पहले से ओर भी पतित हो चुका है और नशाख़ोरी, वेश्यावृत्ति जैसी बुराइयाँ और भी व्यापक रूप धर चुकी हैं। आज जब समाजवादी दौर के सुनहरे इतिहास पर कीचड़ फेंका जा रहा है, तो आज जरूरी है कि समाजवादी दौर की उपलब्धियों का सच आम लोगों तक पहुँचाया जाये जिससे इस बूढ़ी बीमार व्यवस्था को और भी नंगा किया जा सके। आज बेशक रूस और चीन में समाजवादी ढाँचा कायम नहीं रहा, लेकिन इस दौर की उपलब्धियाँ आज भी हमें मौजूदा लूट-आधारित व्यवस्था को ख़त्म करने और नयी समाजवादी व्यवस्था खड़ा करने के लिए प्रेरित करती हैं।

– तजिन्दर

फिलिस्तीन के साथ एकजुटता कन्वेंशन की रिपोर्ट

नरेन्द्र मोदी के प्रस्तावित इजरायल दौरे को रद्द करने और जायनवादी राज्य का पूरी तरह से बक़ायकाट करने की माँग को लेकर अभियान शुरू

फिलिस्तीन पर इजरायली कब्ज़े और लगातार जारी नरसंहारक मुहिम के ख़ि लाफ़ जारी फिलिस्तीनी जनता के प्रतिरोध के प्रति भारतीय जन की एकजुटता दर्शाने के लिए नई दिल्ली के गालिब संस्थान में 22-23 अगस्त को दो-दिवसीय कन्वेंशन आयोजित किया गया। कन्वेंशन के दौरान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की प्रस्तावित इजरायल यात्रा को रद्द करने एवं भारत के कूटनीतिक, सैन्य एवं व्यापार संबन्धों को तोड़ने की माँग को लेकर एक हस्ताक्षर अभियान शुरू करने का फैसला लिया गया। यह कन्वेंशन गाजा पर इजरायली हमले की पहली बरसी के मौके पर 'फ़िलिस्तीन के साथ एजिुट भारतीय जन' की ओर से आयोजित किया गया था। इस हमले में 502 बच्चों सहित 2200 से भी ज़्यादा लोग मारे गए थे।

शनिवार एवं रविवार के दो सत्रों में 'जायनवाद और फिलिस्तीनी प्रतिरोध: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, चुनौतियां और संभावनाएं' एवं 'मध्य-पूर्व का नया साम्राज्यवादी खाका और फिलिस्तीनी मुक्ति का सवाल' विषयों पर कई प्रतिष्ठित वक्ताओं ने इजरायल की नस्लभेदी नीतियों एवं उसके द्वारा फिलिस्तीन की जमीन पर कब्जे की कोशिशों की कठोरशब्दों में भर्त्सना की । कन्वेंशन में यह भी महसूस किया गया कि भारतीय सरकार ने फिलिस्तीनियों के लक्ष्य के साथ विश्वासघात किया है और वह अब जायनवादी राज्य की सबसे बड़ी समर्थक बन चुकी है जिसने सभी अन्तरराष्ट्रीय कानूनों को धता बातते हुए रखकर फिलिस्तीनी लोगों के खि लाफ अपना पागलपन भरा जनसंहारक अभियान जारी रखा है।

फिलिस्तीन में भारत के पूर्व राजदूत प्रो. ज़िक्रउर रहमान, वरिष्ठ पत्रकार सुकुमार मुरलीधारन, लेखिका पेग्गी मोहन, जेएनयू के प्रो. कमल मित्र चिनक्रय, दिल्ली साइंस फोरम के कार्यकर्ता एन. डी. जयप्रकाश,फिलिस्तीन सक्रलिडैरिटी कमेटी के फिरोज मिठीबोरवाला, कवि पंकज सिंह, नीलाभ अश्क तथा कात्यायनी, फिलिस्तीनी कार्यकर्ता नासिर बराक, मज़दूर बिगुल के सम्पादक अभिनव सिन्हा एवं नौभास से जुड़े आनन्द सिंह एवं कई अन्य लोगों ने फिलिस्तीन-इजरायल विवाद के इतिहास एवं राजनीति के बारे में विस्तार से बातें की और कहा कि पश्चिम एशिया में तब तक अमन नहीं कायम हो सकता जब तक कि फिलिस्तीनियों को उनके अधिकार न मिलें और एक एकीकृत धार्मनिरपेक्ष फिलिस्तीनी राज्य का निर्माण न हो।

फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष से भारत के एतिहासिक संबन्धों का जिक्र करते हुए प्रो. रहमान ने कहा कि भारत की सरकार की इजरायल से हालिया करीबी भारत के मूल्यों के खि लाफ है। उन्होंने कब्जे की परिस्थिति में जी रहे फिलिस्तीनियों की भयानक सूरते-हाल का ब्यौरा दिया और कहा कि अन्तत: फिलिस्तीनी लोग अपनी मुक्ति के संघर्ष में जीतेंगे और हम अभी से ही इजरायल के किले में दरारें देख सकते हैं।

सुकुमार मुरलीधरन ने कहा कि गाजा में पिछले साल की गई इजरायली बमबारी तथाकथित आतंक के खि लाफ वैश्विक युद्ध छेड़ने के बाद से चौथा खुलेआम सैन्य हमला था। कई विस्तृत तथ्यों के जरिये यह दिखाया कि अपराधी इजरायली राज्य को अमेरिका की पूरी शह है और इराक युद्ध का एक लक्ष्य इराक को इजरायलियों के लिए हथियाना था ताकि वे फिलिस्तीनियों को इराक की जमीन पर स्थानांतरित कर सकें और फिलिस्तीन की बची हुई जमीन को भी हड़प लें। उन्होंने कहा कि फिलिस्तीनियों के प्रतिरोध की अमर कथा तमाम बाधाओं के बावजूद जारी और उन्होंने यह उम्मीद भी जाहिर की कि एक दिन यह विवाद सुलझ जाएगा।

लेखिका पेग्गी मोहन ने कहा कि हमें जायनवाद और यहूदी धर्म में ठीक उसी तरह से फर्क करना होगा जैसे कि हम हिन्दुत्व और हिन्दू धर्म के बीच करते हैं। उन्होंने कहा कि परवर्ती पूँजीवाद एक खूंख्वार जानवर की शक्ल अख्तियार कर चुका है और जायनवाद इस जानवर का सबसे आगे का डंक है। आज इजरायल मध्य-पूर्व में अमेरिकी साम्राज्यवाद की एक चौकी है जिसके प्राकृतिक संसाधनों को यह जानवर लीले जा रहा है। उन्होंने कहा कि फिलिस्तीनियों का प्रतिरोध हमें यह उम्मीद जगाता है कि लूट और शोषण पर टिकी मौजूदा विश्व व्यवस्था बदली जा सकती है।

फिरोज मिठीबोरवाला ने कहा कि खासकर पिछले वर्ष गाजा पर हुए बर्बर हमले के बाद से दुनियाभर में जनमत इजरायल के खिलाफ हो चुका है और बहिष्कार, विनिवेश और प्रतिबंधा के वैश्विक आंदोलन के कारण इजरायल पर दबाव बढ़ रहा है। उन्होंने अनेक तस्वीरों और आंकड़ों के जरिए यह भी दिखाया कि किस तरह इस्लामिक स्टेट (आईएस) को अमेरिका और इजरायल से फंडिंग और समर्थन मिल रहा है।

मज़दूर बिगुल के संपादक अभिनव सिन्हा ने कहा कि साम्राज्यवादी ताकतों ने जायनवादी परियोजना को इसलिए समर्थन दिया था क्योंकि मध्यपूर्व के प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण की उनकी मुहिम में फिलिस्तीन की धरती का रणनीतिक महत्व था और इजरायल आज भी वहां साम्राज्यवाद के लठैत का काम कर रहा है। मध्यपूर्व आज साम्राज्यवादी अंतरविरोधों की एक गांठ बन चुका है जिसे अब राष्ट्रीय मुद्रि की परियोजना के जरिए नहीं बल्कि केवल मजदूर क्रान्ति के द्वारा ही हल किया जा सकता है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि फिलिस्तीनी समस्या के लिए दो-राज्यों का समाधान आज व्यावहारिक नहीं है और एकमात्र समाधान एक एकीकृत सेकुलर राज्य की स्थापना है जो केवल एक समाजवादी परियोजना के तहत ही यथार्थ में बदल सकता है।

प्रो. कमल मित्र चिनॉय ने कहा कि इजरायल संयुक्त राष्ट्र के 77 प्रस्तावों का उल्लंघन कर चुका है और योजनाबद्ध ढंग से जनसंहार में लिप्त है लेकिन उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गयी है। उन्होंने कहा कि इजरायल परोक्ष रूप से अमेरिका के माध्यम से पाकिस्तान को भी हथियार दे रहा है।

फिलिस्तीनी लोगों और भोपाल गैस पीड़ितों के अधिकारों के लिए लंबे समय से अभियान चला रहे एनडी जयप्रकाश ने पश्चिमी तट और गाजा पट्टी में इजरायली कब्जे की असलियत के बारे में विस्तार से बताया जहां फिलिस्तीनी लोगों के मूलभूत नागरिक और मानवीय अधिकार भी इजरायली कब्जावरों ने छीन लिये हैं।

प्रसिद्ध हिंदी कवियों पंकज सिंह, नीलाभ अश्क और कात्यायनी ने कहा कि शासकों ने भले ही पाला बदल लिया है लेकिन भारत की जनता अपने फिलिस्तीनी भाई-बहनों के साथ खड़ी है।

फिलिस्तीनी एक्टिविस्ट नासिर बराकात ने फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष में समर्थन के लिए भारतीय जनता को धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि मीडिया फिलिस्तीन के सवाल को गलत ढंग से मजहबी संघर्ष के रूप में पेश करता है। फिलिस्तीनी लोग यहूदियों के खिलाफ नहीं हैं बल्कि वे अपनी धरती पर इजरायली कब्जे के खिलाफ लड़ रहे हैं।

'फिलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन' के आनन्द सिंह ने कह कि जायनवाद आज न सिर्फ अमेरिका बल्कि अरब दुनिया के शासकों के समर्थन से भी टिका हुआ है जो अपने देशों में जनविद्रोह की आशंका से घबराये हुए हैं। इन शासकों ने फिलिस्तीन की जनता के साथ बार-बार गद्दारी की है। भारत की सभी चुनावी पार्टियां भी फिलिस्तीनी जनता के संघर्ष के साथ विश्वासघात कर चुकी हैं।

पहले दिन फिलिस्तीन पर केंद्रित कविता सत्र में पंकज सिंह, नीलाभ, कात्यायनी और कविता कृष्णपल्लवी ने फिलिस्तीन पर अपनी कविताएं पढ़ीं। इस मौके के लिए भेजी गई बद्री रैना की दो कविताओं और नित्यानंद गायेन की ताजा कविता का पाठ किया गया। अलीगढ़ से आये तंजील अहमद ने भी अपनी कविता पढ़ी। नीलाभ, सत्यम, अभिनव, तपीश मैंदोला, शुजात अली और फाइज ने महमूद दरवेश, समी अल-कासिम, मोइन बिसेसो, तौफीक जय्याद तथा अन्य फिलिस्तीनी कवियों की कविताओं का पाठ किया। इस मौके पर प्रकाशित फिलिस्तीनी कविताओं के द्विभाषी संकलन 'लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब' का लोकार्पण भी किया गया।

कन्वेंशन में दो डॉक्युमेंट्री फिल्मों का भी प्रदर्शन किया गया। 'टियर्स ऑफ गाजा' गाजा में हमलों के बीच जी रहे लोगों की त्रासदी का मार्मिक चित्रण करती है जबकि 'फाइव ब्रोकन कैमराज़' पश्चिमी तट में एक फिलिस्तीनी गांव के लोगों द्वारा अपने गांव के पास इजरायल द्वारा एक विशाल बाड़ के प्रतिरोध को बेहद प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है।

विहान सांस्कृतिक मंच ने कुछ फिलिस्तीनी गीत और फिलिस्तीनी संघर्ष के समर्थन में कुछ गीत पेश किये। इस अवसर पर पेंटिंग्स, पोस्टर, कविता पोस्टर, कार्टून तथा कैरिकेचरों की प्रदर्शनी भी आयोजित क गई। बड़ी संख्या में छात्रों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, लेखकों, संस्कृतिकर्मियों और विभिन्न क्षेत्रों के नागरिकों ने कन्वेंशन में भागीदारी की।

– कविता कृष्णपल्लवी

फॉक्सकॉन

(पेज 16 से आगे)

जाता है। पहले हम देखेंगे की फॉक्सकॉन के चीन स्थित कारखाने में किस तरह मजदूरों को निचोड़ा जाता है।

काम की नारकीय परिस्थितियाँ

चीन के एक शहर शेनझेन स्थित फॉक्सकॉन के कारख़ाने में करीबन 1,20,000 लोग काम करते हैं। कम्पनी अपने मज़दूरों को अपने ही बनाये गए होस्टलों में रहने के लिए कहती है। होस्टलों के कमरों का आलम यह है कि एक ही कमरे में 6 से लेकर 24 लोगों को ठूँसा जाता है। कँपनी भले ही इस होस्टल सुविधा को मजदूरों के लिए सहूलियत कहे पर असल में यह जेल से कम नहीं है। इन होस्टलों और कारख़ानों में मज़दूरों की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए जगह-जगह कैमरे लगाये गये हैं। पिछले कुछ सालों से फॉक्सकॉन द्वारा चीन के शेनझेन स्थित कारख़ाने में मजदूरों से जिन नारकीय परिस्थियों में काम निकलवाया जा रहा है उसकी ख़बरें बार-बार आती रही हैं। और हाल ही के कुछ सालों में यहाँ मजदूरों के खुदकुशी करने की घटनाएँ भी बार-बार होती रही हैं। खुदकुशी करने वालों में ज्यादातर मजदूर 20 से 25 साल के नौजवान है जिसके चलते अंतरराष्ट्रीय स्तर पर फॉक्सकॉन की भारी आलोचना होती रही है। इस आलोचना को सकारात्मक तरीके से न लेकर उल्टा फॉक्सकॉन ने अपने मजदूरों को किसी भी बाहरी तत्व से कारखाने या कम्पनी सम्बंधित किसी भी समस्या को साझा करने पर प्रतिबन्ध लगा दिये हैं और इसके लिए मजदूरों को धमकाया भी जाता है। जब फेयर लेबर एसोसियेशन नामक संस्था ने फॉक्सकॉन के चीन स्थित 3 कारख़ानों की छानबीन की तब सामने आया कि इन कारख़ानों में मजदूरों की सुरक्षा और स्वास्थ्य को लेकर बहुत सारी समस्याएँ हैं और मज़दूरों से किसी भी अतिरिक्त मुआवज़े के बिना अधिक घंटों तक काम करवाया जाता है। कई मानवाधिकार संगठन जब गुप्त तरीके से फॉक्सकॉन की डोरमेटरीज़ (मजदूरों के रहने की जगह) तक पहुँचे तब उन्होंने पाया कि किस तरीके से फैक्ट्री प्रबंधन मजदूरों की दिनचर्या को नियंत्रित करता है। मजदूरों के काम के घंटे प्रबंधन की और से निश्चित किये जाते हैं, मजदूरों को विशिष्ट चीजों को छोड़ किसी भी चीज को इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं होती। जब भी कोई मजदूर इन नियमों का उल्लंघन करते पाया जाता है तब उसे सार्वजनिक रूप से अपमानित किया जाता है। जब भी कोई नया उत्पाद बाजार में उतारा जाता है तब मजदूरों से 12-13 घंटे लगातार काम निकाला जाता है। उस समय कई मजदूर फैक्ट्री में ही सोने के लिए मजबूर होते हैं। क्योंकि बहुतेरे मजदूर सामान्य आर्थिक पृष्ठभूमि से आनेवाले नौजवान होते है, कम्पनी इनकी मजबूरी का फायदा उठाती है। यहाँ काम कर रहे ज़्यादातर मज़दूर बाहरी इलाकों से आने वाले नौजवान होते हैं पर इन्हें अपने घर जाने के लिए साल में एक ही बार छुट्टी मिलती है।

फॉक्सकॉन का इतिहास इतना कुख्यात होने के बावजूद महाराष्ट्र सरकार ने उसके लिए लाल कालीन बिछाया है। ये महज़ इत्तेफ़ाक नहीं है कि एक तरफ महाराष्ट्र सरकार फॉक्सकॉन को 1500 एकड़ ज़मीन मुहैया करा रही है और दूसरी और फॉक्सकॉन मोदी के चहेते अडानी ग्रुप के साथ मिलकर ज्वाइंट वेंचर शुरू करने की बात कर रही थी। एक और चीज गौर करने लायक है वो है फॉक्सकॉन का एक व्यापारिक अनुबंध जो उन्होंने सुभाष घई की एक कंपनी 'व्हिसलिंग वुड्स इंटरनेशनल' से किया है। इस अनुबंध के अनुसार 'व्हिसलिंग वुड्स इंटरनेशनल' फॉक्सकॉन को डिजिटल कंटेंट निर्माण में मदद करेगा। ज़ाहिर है कि यह डिजिटल कंटेंट निर्माण के नाम पर विज्ञापनों के ज़रिये फॉक्सकॉन के पक्ष में जनता की आम राय तैयार करने का काम ज़्यादा करेगा। जिस तत्परता से महाराष्ट्र सरकार ने फॉक्सकॉन के लिए ज़मीन मुहैया करवाई है और श्रम 'सुधार' लागू करने के लिए प्रतिबद्धता दिखायी है उससे साबित हो गया है कि एक समय स्वदेशी का राग जपने वाले तथाकथित राष्ट्रवादियों की यह सरकार विदेशी पूँजी के लिए किस कदर घुटने टेक चुकी है।

– अमित शिन्दे

हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्ट और बर्बर इज़रायली ज़ायनवादी एक-दूसरे के नैसर्गिक जोड़ीदार हैं!

पिछले साल इज़रायल जब गाज़ा में बमबारी करते हुए इस सदी के बर्बरतम नरसंहार को अंजाम दे रहा था उस समय भारत सहित दुनिया के तमाम इंसाफपसन्द लोग इज़रायल की इस बबर्रता के विरोध में सड़कों पर उतरे थे। लेकिन यही वो समय था जब भारत में सत्ता के गलियारों में हिन्दुत्ववादी फासिस्टों का उन्मादपूर्ण विजयोल्लास अपने चरम पर था। नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में हिन्दुत्ववादी फासिस्टों को सत्ता में आए अब एक साल से भी ज़्यादा का समय बीत चुका है। जैसा कि उम्मीद थी, पिछले एक साल में हिन्दुत्ववादी भाजपा की सरकार ने अपने आचरण से यह साफ़ कर दिया है कि वह जॉयनवादी बर्बरों की वैचारिक रिश्तेदार है। इस वैचारिक रिश्तेदारी को और सुदृढ़ करने के मक़सद से नरेन्द्र मोदी ने इज़रायल की यात्रा पर जाने की घोषणा कर दी है। इस यात्रा से पहले जॉयनवादी बर्बरों को दोस्ती का तोहफ़ा भेजते हुए मोदी सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ में पिछले तीन महीने में तीन बार इजरायल के ख़िलाफ़ मतदान करने की बजाय अपने आपको मतदान से दूर रखा।

इज़रायल के साथ भारत के रिश्तों में गरमाहट नवउदारवाद के पदार्पण के साथ ही आनी शुरू हो गई थी जब नरसिंह राव की कांग्रेसी सरकार ने 1992 में इज़रायल के साथ राजनयिक रिश्तों की शुरुआत की। उसके बाद देवगौड़ा की संयुक्त मोर्चा की सरकार ने बराक मिसाइल के सौदे के समझौते पर हस्ताक्षर करके इज़रायल के साथ सामरिक संबन्धों की नींव रखी। ग़ौरतलब है कि उस सरकार में संसदमार्गी छद्म कम्युनिस्टों ने भी हिस्सा लिया था और गृह मंत्रालय जैसा महत्वपूर्ण मंत्रालय उनके पास था। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार इज़रायल के साथ संबन्धों को नई ऊंचाइयों पर ले गई। यही वह दौर था जब इजरायल के नरभक्षी प्रधानमंत्री एरियल शैरोन ने भारत की यात्रा की। यह किसी इज़रायली प्रधानमंत्री की पहली भारत यात्रा थी। 2004 से 2014 के बीच मनमोहन सिंह के नेतृत्व में कांग्रेसी शासन में भी इज़रायल के साथ सामरिक संबन्धों में विस्तार की प्रक्रिया निर्बाध रूप से जारी रही।

पिछले साल मोदी के नेतृत्व में हिन्दुत्ववादियों के सत्ता में पहुँचने के बाद से ही इज़रायल के साथ सम्बान्धों को पहले से भी अधिक प्रगाढ़ करने की दिशा में प्रयास शुरू हो चुके थे। गाज़ा में बमबारी के वक़्त हिन्दुअत्ववादियों ने संसद में इस मुद्दे पर बहस कराने से साफ़ इनकार कर दिया था ताकि उसके जॉयनवादी भाई-बंधुओं की किरकरी न हो। पिछले ही साल सितंबर के महीने में न्यूयॉर्क में संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेंबली की बैठक के दौरान मोदी ने गुज़रात के मासूमों के

खून से सने अपने हाथ को गाज़ा के निर्दोषों के ताज़ा लहू से सराबोर नेतन्याहू के हाथ से मिलाया। नेतन्याहू इस मुलाक़ात से इतना गदगद था मानो उसका बिछुड़ा भाई मिल गया हो। उसने उसी समय ही मोदी को इज़रायल आने का न्योता दे दिया था। गुज़रात के मुख्यमंत्री रहने के दौरान मोदी पहले ही इज़रायल की यात्रा कर चुका है, लेकिन एक प्रधानमंत्री के रूप में यह उसकी पहली यात्रा होगी।

मोदी-नेतन्याहू मुलाकात के बाद अक्टूबर में रक्षा अधिग्रहण परिषद ने 80,000 करोड़ रुपये की रक्षा परियोजनाओं को मंजूरी दी। इसमें से 50,000 करोड़ रुपये नौसेना के लिए छह पनडुब्बियों के निर्माण में ख़र्च किये जायेंगे। 3,200 करोड़ रुपये 8000 इज़रायली टैंकरोधी मिसाइल स्पाइक की ख़रीद में ख़र्च किये जायेंगे। ग़ौर करने वाली बात यह है कि भारत ने इज़रायल की इस मिसाइल को अमेरिका की जैवेलिन मिसाइल के ऊपर तवज्जो दी है जिसके लिए अमेरिका लम्बे समय से लॉबिंग कर रहा था। अमेरिकी रक्षा मन्त्री चक हेगल ने पिछले साल अपनी भारत यात्रा के दौरान भी इस मिसाइल को भारत को बेचने के लिए लॉबिंग की थी। लेकिन अमेरिकी मिसाइल के ऊपर इज़रायली मिसाइल को तवज्जो देना हिन्दुत्ववादियों के इज़रायली जॉयनवादियों से गहरे रिश्तों को उजागर करता है। इज़रायल भविष्य में अपने इरॉन डोम नामक मिसाइल रोधी प्रणाली को भी भारत को बेचने की फिराक़ में है।

पिछले साल नवम्बर की शुरुआत में गृहमन्त्री राजनाथ सिंह ने इज़रायल की यात्रा की। वर्ष 2000 में लालकृष्ण आडवाणी की यात्रा के बाद से यह किसी भारतीय गृहमन्त्री की पहली इज़रायल यात्रा थी। इस यात्रा के दौरान राजनाथ सिंह ने इज़रायली रक्षा कम्पनियों को 'मेक इन इण्डिया' मुहिम के तहत भारत में निवेश करने का न्योता दिया। इज़रायली रक्षा मन्त्री मोशे यालोन से मुलाकात के दौरान राजनाथ सिंह ने रक्षा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में रियायत देने के मोदी सरकार के फैसले को विशेष तौर पर रेखांकित किया। इज़रायली रक्षा मन्त्री ने अपनी ओर से रक्षा के क्षेत्र में भारत को अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी हस्तान्तरित करने की मंशा जतायी। इस यात्रा के दौरान राजनाथ सिंह ने गाज़ा की सीमा पर इज़रायली सैनिक चौकियों का दौरा भी किया। अधिकारियों का कहना था कि राजनाथ सिंह इजरायल द्वारा इस्तेमाल की जा रही अत्याधुनिक सीमा सुरक्षा की प्रौद्योगिकी से काफी प्रभावित दिखे। इस प्रौद्योगिकी में उच्च गुणवत्ता वाली लम्बी रेंज वाले दिन के कैमरे और रात्रि प्रेक्षण प्रणाली शामिल है। इसके अतिरिक्त राजनाथ सिंह डिटेक्शन रडार से भी बहुत प्रभावित हुए जिसकी मदद से सीमा पार कई किलोमीटर तक की हलचल को आसानी से प्रेक्षित किया जा सकता है। यही नहीं गाज़ा की सीमा पर सुरंग बनाने के प्रयासों को निष्क्रिय करने के लिए सीस्मिक प्रणाली वाले मोशन सेंसर से भी राजनाथ सिंह प्रभावित हुए। ज़ाहिर है कि इज़रायल भविष्य में इन सभी प्रौद्योगिकियों को भारत को बेचने की योजना बना रहा है और राजनाथ सिंह को एक सम्भावित ग्राहक के रूप में देखकर उसने इन प्रौद्योगिकियों की नुमाइश की।

भारत से बढ़ती क़रीबी इज़रायल की अर्थव्यवस्था के लिए एक संजीवनी का काम कर रही है क्योंकि पिछले एक दशक से जारी बीडीएस (बॉयकॉट, डाइवेस्टमेंट एंड सैक्शन) आंदोलन की वजह से दुनिया के कई देशों ने इज़रायल के साथ व्यापारिक संबन्धों को बहुत सीमित कर दिया है जिससे उसकी अर्थव्यवस्था पर ख़तरे के बादल मंडरा रहे हैं। ऐसे में अमेरिका के अलावा भारत उन चन्द गिने-चुने देशों में है जिसका इज़रायल के साथ सामरिक और व्यापारिक सम्बन्ध फल-फूल रहा है। भारत इज़रायल द्वारा बेचे जाने वाले हथियारों का दुनिया में सबसे बड़ा ख़रीदार है और भारत को हथियारों की सप्लाई करने वाले देशों में इज़रायल का स्थान दूसरा है। केवल रक्षा के क्षेत्र में ही नहीं इज़रायल भारत के कई राज्यों में जल संरक्षण, सिंचाई आदि के क्षेत्र में तकनीकी सहायता के लिए सेंटर ऑफ एक्सीलेंस खोल चुका है और आने वाले दिनों में कई और खोलने की योजना है। भारत में हिन्दुत्ववादियों के सत्ता में क़ाबिज़ होने के साथ ही इस्लामिक आतंकवाद का हौव्वा एक बार फिर से जोर-शोर से खड़ा किया जा रहा है। आतंकवाद विरोध के नाम पर मासूमों के नृशंस क़त्ले-आम को अंजाम देने के इज़रायली तरीके को एक प्रसिद्ध इजरायली इतिहासकार ने क्रमिक नरसंहार की संज्ञा दी है। हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्ट अपने वैचारिक रिश्तेदार जॉयनवादियों से क्रमिक नरसंहार के इसी हुनर को सीखने के लिए बेकरार हैं ताकि भारत में भी उसे आजमाया जा सके। मोदी की आगामी इज़रायल यात्रा को हमें इसी परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।

– आनन्द सिंह

धागों में उलझी ज़िन्दगियाँ

(पेज 15 से आगे

से चार महीने में परिसर के मालिक द्वारा साफ करवाए जाते हैं। अगर मज़दूर परिसर के मालिक से गुसलखाना साफ करवाने की बात कहे, तो मालिक दूसरा कमरा ढूँढने को कह देता है।

दूसरे प्रकार के रिहाइशी मकान तीन से चार मंज़िला इमारतों में हैं। इन इमारतों के बीच में खुली जगह है और किनारों पर कमरे हैं। हर मंज़िल पर 16 कमरे और इनमें रहने वालों के लिए दो-तीन गुसलखाने हैं। इन कमरों का किराया 3,000 से 4000 रुपये है। बिजली का बिल अलग से। हर मंज़िल पर पानी पीने के लिए कतार में कुछ नल लगे हैं। इन कमरों का किराया इसलिए भी ज़्यादा है क्योंकि इनकी छतों पर लेंटर पड़े हैं।

मालिक या तो खुद किराया लेने आते हैं या उनके रखवाली करने वाले, जो कि आमतौर पर स्थानीय गुंडे होते हैं। मज़दूरों को अक्सर मालिक या रखवाले अपनी किराने की दुकानों से महंगा सामान खरीदने के लिए भी मजबूर करते हैं। इससे बच भी जाएँ तो भी मज़दूर को बाज़ार में ऊँची कीमतों पर सामान खरीदना ही पड़ता है, क्योंकि उनके पास वोटर या राशन कार्ड नहीं हैं। कई बार मालिक इस पर भी पाबंदी लगा देते हैं कि एक कमरे में कितने बच्चे रहेंगे। इसके कारण कई बार मज़दूरों को अपने बच्चों को गाँव में छोड़कर आना पड़ता है, जहाँ वे अपने रिश्तेदारों के साथ रहते हैं।

कमरों से निकाले जाने का खतरा हमेशा उनके सिरों पर मंडराता रहता है। मालिक छोटी से छोटी बात पर भी मज़दूरों को कमरा छोड़ने को कह सकते हैं। जैसे शौचालयों की सफाई की मांग करना या फैक्ट्री में किसी मुसीबत में पड़ जाना, आदि। जब हमारी टीम समी चंद से मिलने उनके भाई के कमरे पर गई थी तो मालकिन ने बहुत हो-हल्ला मचाया था। उसने यह तक कहा कि समी चंद और उनका परिवार पूरे मामले में झूठ बोल रहे हैं।

जिस तरह के घरों में मज़दूर रहते हैं उनका गुड़गाँव के आलीशान फार्म हाउसों से दूर दूर तक मुकाबला नहीं है, ठीक उसी तरह जैसे उनकी ज़िंदगियाँ उन लोगों की ज़िंदगियों से कतई मेल नहीं खातीं जिनके लिए वे इतनी कमरतोड़ मेहनत करते हैं। विडम्बना यह है की गुड़गाँव के फार्महाउस और पेंटहाउस आदि से बहुत नज़दीक होने के बावजूद भी, इन मज़दूरों के घरों की दुर्दशा को आसानी से नज़रंदाज़ कर दिया जाता है।

मेड इन इण्डिया

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र या एन.सी.आर. कहलाने वाला इलाका, देश भर में हो रहे कपड़ा उत्पादन केन्द्रों में से एक है। भारत उन कई देशों में से एक है, जो तैयार कपड़े बनाकर अन्य देशों को सप्लाई करते हैं। यह एक तरह की वैश्विक असेम्बली लाइन है। इस पायदान पर सबसे ऊपर अमरीका और यूरोप में स्थित बड़े मल्टी-नेशनल ब्रांड वाली कम्पनियाँ हैं और सबसे नीचे भारत जैसे देशों में स्थापित कपड़ा उद्योग फैक्ट्रियाँ हैं। (देखें फ्लोचार्ट)। अंतर्राष्ट्रीय ब्रांड जैसे बेनेटन, गैप, ज़ारा, ए. एंड एफ., वालमार्ट, आदि विकासशील देशों में बन रहे कपड़ों की खरीददारी करते हैं। कभी-कभी ये ब्रांड 'बाइंग हाउस' कहलाने वाली कम्पनियों की मदद से इन देशों में खरीददारी करते हैं। सस्ते मज़दूर मुहै"या कराने वाले देश - जैसे भारत, बांग्लादेश, इंडोनेशिया, वियतनाम, आदि का एक दूसरे के साथ कड़ा मुकाबला होता रहता है। हर देश कोशिश करता है कि वह कम से कम खर्च पर कपड़े बना सके ताकि वे सबसे ज़्यादा ऑर्डर हथिया सकें। इसी प्रतिस्पर्धा के चलते मज़दूरों की मज़दूरी इतनी कम हो जाती है। कुछ रिपोर्टों के अनुसार चीन के मज़दूरों को प्रति घंटा केवल 1.66 अमरीकी डॉलर, पाकिस्तान में 56 सेंट, भारत में 51 सेंट, इंडोनेशिया में 44 सेंट, वियतनाम में 36 सेंट, और बांग्लादेश में केवल 31 सेंट ही मिल पाता है (एक अमरीकी डॉलर में 100 सेंट होते हैं, जून 2015 में 1 डॉलर, भारत के करीब 64 रुपए के बराबर था) स्रोत जर्मी सीब्रुक, द सोंग ऑफ़ द शर्ट, 2014)। उद्योग विहार में एक मज़दूर संगठन के अनुसार, बाज़ार में 1500 रुपये में बिकने वाली एक कमीज़ की मज़दूरी लागत केवल 10 रुपये है। और भारत में कच्चा माल समेत पूरी कमीज़ बनाने का खर्च 100 या 150 रुपये से ज़्यादा नहीं पड़ता है (अर्चना अग्रवाल, पीस बाय पीस, हिमाल साउथ एशियन, मार्च 2015)।

यह असेम्बली लाइन, ब्रांड वाली कम्पनियों को अपना कपड़ा बनाने का खर्च कम करने में मदद करती है, क्योंकि ब्रांड कम्पनियाँ उन्हीं कपड़ा बनाने वाली फैक्ट्रियों से कपड़े खरीदती हैं जो सबसे कम खर्च पर तैयार कपड़े सप्लाई करती हैं। इसके कारण विश्व के बड़े पूंजीवादियों को बहुत ज़्यादा मुनाफा होता है। साथ ही क्योंकि ये बड़े ब्रांड वाली कम्पनियाँ मज़दूरों को खुद नौकरी पर नहीं रखतीं इसलिए कानूनन इनकी मज़दूरों के प्रति कोई जवाबदेही या ज़िम्मेदारी भी नहीं बनती। वे केवल समय-समय पर खानापूर्ति के लिए दौरा करके ये सुनिश्चित कर जाती हैं कि फैक्ट्री मालिक निर्धारित कार्य प्रणालियों का पालन कर रहे हैं या नहीं। इनमें से कई

प्रणालियाँ तो केवल उस समय दिखावे के लिए चलाई जाती हैं, जब ऐसा कोई दौरा होने वाला होता है। इस प्रकार से उत्पादन करने में सबसे ज़्यादा मुनाफा बड़े ब्रांड वाली कम्पनियों को ही होता है और इसका सबसे ज़्यादा भार गरीब देशों के मज़दूरों पर पड़ता है। विकासशील देशों में कपड़ा बनाने वाली फैक्ट्रियाँ भी मुनाफे में ही रहती हैं, हालांकि उनका मुनाफा बड़ी ब्रांड वाली कम्पनियों जितना नहीं होता। इन फैक्ट्रियों को होने वाले मुनाफे का अनुमान टीम को बताए गए इस तथ्य से लगाया जा सकता है - मोडेलेमा एक्सपोर्ट्स लिमिटेड 15 साल पहले तक मायापुरी में एक छोटी सी कम्पनी थी (ये छोटी कम्पनियाँ बड़े ब्रांड वाली कम्पनियों से सीधा लेन-देन नहीं करती और इन्हें फैब्रिकेटर यूनिट कहा जाता है), जो बड़ी कम्पनियों से आर्डर लिया करती थी। 15 सालों के बाद आज इस कम्पनी की 16 फैक्ट्रियाँ हैं, जिनमें लगभग पाँच से आठ हजार मज़दूर काम करते हैं। अब ये सीधा बड़े ब्रांड वाली कम्पनियों से लेन-देन करती है।

निष्कर्ष

विकासशील देशों में कपड़ा मज़दूरों कें साथ हो रही दुर्घटनाएं मज़दूरों पर बढ़ते बोझ का नतीजा हैं। अप्रैल 2013 में बांग्लादेश में हुआ राना प्लाज़ा हादसा, जिसमें एक इमारत के गिरने से लगभग 1,000 कपड़ा मज़दूरों की मौत हो गई थी, दुनिया के सबसे विनाशकारी औद्योगिक हादसों में से एक है। उद्योग विहार की कपड़ा फैक्ट्रियों में काम करने और रहने के हालात पर नज़र डालने से हमें हमारे खुद के देश में भी वर्तमान और भावी रोज़गार की स्थिति की झलक मिल जाती है। कई मायनों में गारमेंट सेक्टर भारत के मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर और इसमें कार्यरत मज़दूर वर्ग के शोषित चेहरे को प्रतिबिंबित करता है। फरवरी 2015 की घटना महज़ एक छोटा सा उदाहरण है कि इस क्षेत्र में कार्यरत मज़दूरों के साथ किस तरह का सुलूक किया जाता है।

मज़दूरों के जीवन में नौकरी को लेकर असुरक्षा इस बात से ज़ाहिर हो जाती है कि सालों तक कड़ी मेहनत करने के बाद भी इन्हें कभी भी निकाल-बाहर किया जा सकता है और तालाबंदी की सूरत में बिना किसी मुआवज़े के काम छोड़ने पर मजबूर किया जा सकता है। लगभग हर मज़दूर को आमदनी के एक से ज़्यादा स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है। जैसे अपने गाँव से राशन मंगवाना। घर खर्च पूरा ना पड़ने की मजबूरी के कारण उन्हें कई बार अपने परिवार के लोगों को अपने से दूर गाँव में ही रखना पड़ता है।

जो वेतन इन मज़दूरों को दिया जाता है, वह लगातार बढ़ती महंगाई के सामने पूरा नहीं पड़ता। इतनी कम तनख्वाह के बावजूद वे खुले बाज़ार से रोज़मर्रा की खरीदारी करने के लिए मजबूर होते हैं, क्योंकि 20-25 साल दिल्ली में रहने के बाद भी इनके राशन कार्ड नहीं बने हैं। अगर मकान मालिक अपनी दुकान से खरीदने की शर्त रख दे तो कई बार इन्हें बाज़ार की कीमतों से भी ज़्यादा मोल चुकाना पड़ता है। ऊपर से घर और फैक्ट्री से निकाले जाने का खतरा इनके सिरों पर रात-दिन मंडराता रहता है।

उत्पादन के कठिन टारगेट और सुरक्षा प्रावधानों के न के बराबर होने के कारण इन मज़दूरों के जीवन में अस्थिरता और असुरक्षा लगातार बनी रहती है। इन सब से महत्वपूर्ण यह है कि इनके पास अपने बच्चों के जीवन को बेहतर करने के कोई साधन नहीं हैं। जिन मज़दूरों को बीमारी के वक्त में भी खर्च के लिए रिश्तेदारों या ठेकेदारों से कर्ज़ लेना पड़ता है, वे मुश्किल से ही अपने बच्चों की पढ़ाई का खर्च जुटा पाते हैं।

ऐसी स्थिति में जहाँ साथ मिलकर संघर्ष करना मुमकिन नहीं हो पाता, हताशा अक्सर गुस्से का रूप ले लेती है। फरवरी 2015 की घटना इसी गुस्से को प्रतिबिंबित करती है। इस तरह की घटनाएं अक्सर भुला दी जाती हैं। लेकिन इन मज़दूरों की असुरक्षित और अस्थिर परिस्थितियों को याद रखना बेहद ज़रूरी है, क्योंकि विकासशील और बढ़ते भारत का सपना इसी सच्चाई में लिप्त है।

फ्लोचार्ट

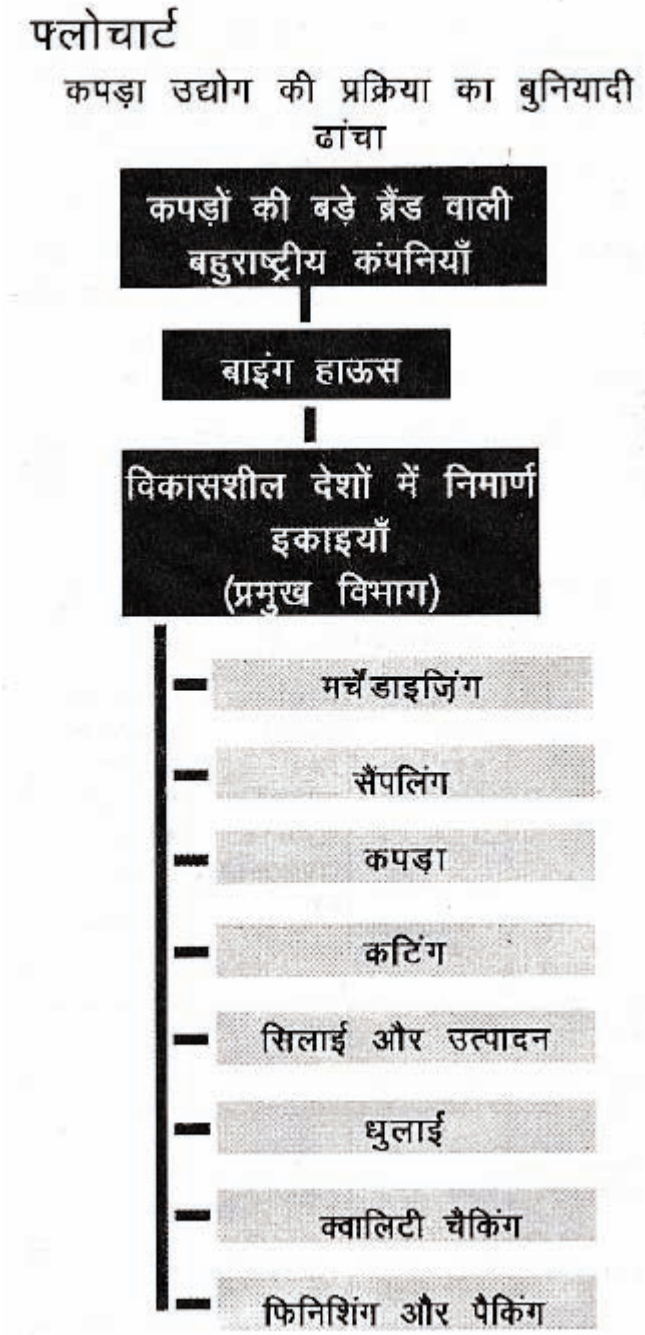

अच्छे दिनों का भ्रम छोड़ो, एकजुट हो, सामने खड़ी चुनौतियों का मुकाबला करने की तैयारी करो!

पेज 1 से आगे)

छीना जा चुका है, तमाम पब्लिक सेक्टर की मुनाफ़ा कमाने वाली कम्पनियों का निजीकरण किया जा रहा है, जिसका अंजाम होगा बड़े पैमाने पर सरकारी कर्मचारियों की छँटनी। ठेका प्रथा को 'अप्रेण्टिस' जैसे नये नामों से बढ़ावा दिया जा रहा है। पेट्रोलियम उत्पादों की अन्तरराष्ट्रीय कीमतें आधी हो जाने के बावजूद मोदी सरकार ने तमाम टैक्स और शुल्क बढ़ाकर उसकी कीमतों को ज़्यादा नीचे नहीं आने दिया है। विदेशों से काला धन वापस लाने को लेकर तरह-तरह के बहाने बनाये जा रहे हैं और देश में काले धन को और बढ़ावा देने के इन्तज़ाम किये जा रहे हैं। विदेशों में जमा काला धन का एक पाई भी नहीं आया। देश के हर नागरिक के खाते में 15 लाख रुपये आना तो दूर, फूटी कौड़ी भी नहीं आयी। कुल काले धन का 80 फीसदी तो देश के भीतर है। उसमें भारी बढ़ोत्तरी के सारे इन्तज़ाम किये जा रहे हैं। रुपये की कीमत में रिकार्ड गिरावट के चलते महँगाई और ज़्यादा बढ़ रही है।

दूसरी तरफ़, अम्बानी, अदानी, बिड़ला, टाटा जैसे अपने आकाओं को मोदी सरकार एक के बाद एक तोहफ़े दे रही है! तमाम करों से छूट, लगभग मुफ्त बिजली, पानी, ज़मीन, ब्याजरहित कर्ज़ और मज़दूरों को मनमाफिक ढंग से लूटने की छूट दी जा रही है। देश की प्राकृतिक सम्पदा और जनता के पैसे से खड़े किये सार्वजनिक उद्योगों को औने-पौने दामों पर उन्हें सौंपा जा रहा है। 'स्वदेशी', 'देशभक्ति', 'राष्ट्रवाद' का ढोल बजाते हुए सत्ता में आये मोदी ने अपनी सरकार बनने के साथ ही बीमा, रक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों समेत तमाम क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को इजाज़त दे दी है। 'मेक इन इण्डिया' के सारे शोर-शराबे का अर्थ यही है कि "आओ दुनिया भर के मालिको, पूँजीपतियो और व्यापारियो! हमारे देश के सस्ते श्रम और प्राकृतिक संसाधनों को बेरोक-टोक जमकर लूटो!"

सच तो यह है कि विदेशों से आने वाली पूँजी अतिलाभ निचोड़ेगी और बहुत कम रोजगार पैदा करेगी। मोदी के ''श्रम सुधारों'' के परिणामस्वरूप मज़दूरों के रहे-सहे अधिकार भी छिन जायेंगे। असंगठित मज़दूरों के अनुपात में और अधिक बढ़ोत्तरी हो रही है। बारह-चौदह घण्टे सपरिवार खटने के बावजूद मज़दूर परिवारों का जीना मुहाल है। औद्योगिक क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर मज़दूर असन्तोष बढ़ रहा है लेकिन दलाल और सौदेबाज यूनियनें 2 सितम्बर की हड़ताल जैसे अनुष्ठानिक विरोध से उस पर पानी के छींटे डालने का ही काम कर रही हैं। मगर यह तय है कि आने वाले समय में स्वत:स्फूर्त मज़दूर बगावतें बढ़ेंगी और क्रान्तिकारी वाम की कोई धारा यदि सही राजनीतिक लाइन से लैस हो, तो उन्हें सही दिशा में आगे बढ़ा सकती है।

जल, जंगल, ज़मीन, खदान – सब कुछ पहले से कई गुना अधिक बड़े पैमाने पर देशी-विदेशी कारपोरेट मगरमच्छों को सौंपने की मोदी सरकार की मंशा भूमि अधिग्रहण कानून से ही साफ हो गयी थी। भारी विरोध के कारण अभी उसे वापस भले ही ले लिया गया है लेकिन जमीन सहित प्राकृतिक संसाधनों को लुटेरों के हाथों में सौंपने की नीयत में कोई बदलाव नहीं आया है। लोगों को बन्दूक़ की नोक पर विस्थापित किया जायेगा और उनके हर प्रतिरोध को बर्बरतापूर्वक कुचलने की कोशिश जारी हैं।

विश्वव्यापी मंदी और आर्थिक संकट की जिस नयी प्रचण्ड लहर की भविष्यवाणी दुनिया भर के अर्थशास्त्री कर रहे हैं, वह तीन-चार वर्षों के भीतर भारतीय अर्थतंत्र को एक भीषण दुश्चक्रीय निराशा के भँवर में फँसाने वाली है। मँहगाई और बेरोजगारी तब विकराल हो जायेगी। व्यवस्था का क्रान्तिकारी संकट अपने घनीभूततम और विस्फोटक रूप में सामने होगा। अभी मोदी सरकार भले ही चीन के संकट का लाभ उठाने के मुंगेरीलाल वाले हसीन सपने देख रही हो, लेकिन यह तय है कि उसके हाथ भी कुछ खास आने वाला नहीं है।

मोदी की तमाम धावा-धूपी और देशी-विदेशी लुटेरों के आगे पलक-पाँवड़े बिछाने की कोशिशों के बावजूद असलियत यह है कि निवेशक पूँजी लेकर आ ही नहीं रहे हैं। जैसा कि हमने 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंक में कहा था, लगातार गहराती मन्दी के कारण विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के सारे सरगना खुद ही परेशान हैं। अति-उत्पादन के संकट के कारण दुनियाभर में उत्पादक गतिविधियाँ पहले ही धीमी पड़ रही हैं और तमाम उपायों के बावजूद बाज़ार में माँग उठ ही नहीं रही है, तो 'मेक इन इंडिया' करने के लिए पूँजी निवेशकों की लाइन कहाँ से लगने लगेगी? जो आयेगा भी, वह चाहेगा कि कम से कम लगाकर ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़ ले जाये। मोदी आजकल यही लुकमा फेंकने की कोशिश कर रहे हैं कि किसी भी तरह आप पूँजी लगाओ तो सही, हम आपको यहाँ लूटमार मचाने की हर सुविधा की गारंटी करेंगे। हाल में भारतीय पूँजीपतियों के संगठन एसोचैम ने कहा कि निजी क्षेत्र में निवेश बढ़ने की सम्भावना ही कहाँ है जबकि बहुत से उद्योगों में पहले ही सिर्फ 30-40 प्रतिशत उत्पादन हो रहा है। अब तमाम पूँजीपति सरकार से खर्च बढ़ाने की गुहार लगा रहे हैं।

हालात की एक झलक तो तभी मिल गयी जब पूँजीपतियों को आसमान के तारे तोड़कर लाने के वादे करने वाले मोदी ने उनसे कहा कि पूँजीनिवेश करने के लिए उन्हें "जोखिम" उठाना पड़ेगा। अब कौन व्यापारी इतना बेवकूफ होगा कि संकट और मन्दी के माहौल में और भी बढ़कर रिस्क उठायेगा? यही करना तो मोदी को लाने की क्या ज़रूरत थी? लुब्बेलुआब यह है कि आर्थिक संकट मोदी के तमाम लच्छेदार भाषणों की हवा निकालने में लगा हुआ है। ऐसे में लोगों का असन्तोष बढ़ना लाज़िमी है।

भविष्य के ''अनिष्ट संकेतों'' को भाँपकर मोदी सरकार अभी से पुलिस तंत्र, अर्द्धसैनिक बलों और गुप्तचर तंत्र को चाक-चौबन्द बनाने पर सबसे अधिक बल दे रही है। घनीभूत संकट के दौरान शासक वर्गों की राजनीतिक एकजुटता भी छिन्न-भिन्न होने लगी और बढ़ती अराजकता भारतीय राज्य को एक ''विफल राज्य'' जैसी स्थिति में भी पहुँचा सकती है। जन-संघर्षों और विद्रोहों को कुचलने के लिए सन्नद्ध दमन तंत्र भारतीय राज्य को एक 'पुलिस स्टेट' जैसा बना देगा।

मोदी के अच्छे दिनों के वायदे का बैलून जैसे-जैसे पिचककर नीचे उतरता जा रहा है, वैसे-वैसे हिन्दुत्व की राजनीति और साम्प्रदायिक तनाव एवं दंगों का उन्मादी खेल जोर पकड़ता जा रहा है ताकि जन एकजुटता तोड़ी जा सके। अंधराष्ट्रवादी जुनून पैदा करने पर भी पूरा जोर है। पाकिस्तान के साथ सीमित या व्यापक सीमा संघर्ष भी हो सकता है क्योंकि जनाक्रोश से आतंकित दोनों ही देशों के संकटग्रस्त शासक वर्गों को इससे राहत मिलेगी।

मोदी सरकार की नीतियों ने उस ज्वालामुखी के दहाने की ओर भारतीय समाज के सरकते जाने की रफ्तार को काफी तेज कर दिया है, जिस ओर घिसटने की यात्रा गत लगभग तीन दशकों से जारी है। भारतीय पूँजीवाद का आर्थिक संकट ढाँचागत है। यह पूरे सामाजिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर रहा है। बुर्जुआ जनवाद का राजनीतिक-संवैधानिक ढाँचा इसके दबाव से चरमरा रहा है। मोदी सरकार पाँच वर्षों के बाद लोगों के सामने अलग नंगी खड़ी होगी। भारत को चीन और अमेरिका जैसा बनाने के सारे दावे हवा हो चुके रहेंगे। भक्तजनों को मुँह छुपाने को कोई अँधेरा कोना नहीं नसीब होगा। फिर 'एण्टी-इन्कम्बेंसी' का लाभ उठाकर केन्द्र में चाहे कांग्रेस की सरकार आये या तीसरे मोर्चे की शिवजी की बारात और संसदीय वामपंथी मदारियों की मिली-जुली जमात, उसे भी इन्हीं नवउदारवादी नीतियों को लागू करना होगा, क्योंकि कीन्सियाई नुस्खों की ओर वापसी अब सम्भव ही नहीं।।

आम लोग "अच्छे दिनों" की असलियत को समझ रहे हैं और उनके भीतर नाराज़गी और गुस्सा बढ़ रहा है। यही कारण है कि मोदी सरकार लुटेरों की सेवा करने के अपने जनविरोधी कदमों के साथ ही देश भर में साम्प्रदायिक तनाव भड़काया जा रहा है। पहले 'लव जिहाद' का शोर मचाया गया था, जो कि फ़र्जी निकला; उसके बाद, 'घर वापसी' के नाम पर तनाव पैदा किया जा रहा है 'रामज़ादे-हरामज़ादे' जैसी बयानबाज़ियाँ की जा रही हैं मोदी सरकार को भगवा ब्रिगेड 800 वर्षों बाद 'हिन्दू राज' की वापसी क़रार दे रही है कुछ वर्षों में सारे भारत को हिन्दू बनाने का एलान किया जा रहा है हिन्दू औरतों से चार बच्चे पैदा करने के लिए कहा जा रहा है! भगवा ब्रिगेड की हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिकता के साथ ओवैसी जैसी इस्लामिक कट्टरपंथी नेता भी साम्प्रदायिक उन्माद भड़का रहे हैं। साम्प्रदायिक माहौल और दंगों का लाभ चुनावों में हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों को भी मिलेगा और साथ ही ओवैसी जैसे इस्लामिक कट्टरपंथियों को भी; इसके अलावा, कांग्रेस, सीपीआई, सीपीएम, सपा, बसपा, आप, राजद, जद (यू) जैसी तथाकथित सेक्युलर पार्टियों को भी वोटों के ध्रुवीकरण का लाभ मिलेगा। और इस तनाव के माहौल में किन लोगों की जान-माल का नुकसान होगा? आम मेहनतकश जनता का, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान!

आने वाले वर्षों में व्यवस्था के निरन्तर जारी असाध्य संकट का कुछ-कुछ अन्तराल के बाद सड़कों पर विस्फोट होता रहेगा। जब तक साम्राज्यवाद विरोधी पूँजीवाद विरोधी सर्वहारा क्रान्ति की नयी हरावल शक्ति नये सिरे से संगठित होकर एक नये भविष्य के निर्माण के लिए आगे नहीं आयेगी, देश अराजकता के भँवर में गोते लगाता रहेगा और पूँजीवाद का विकृत से विकृत, वीभत्स से वीभत्स, बर्बर से बर्बर चेहरा हमारे सामने आता रहेगा

ऐसे में हम तमाम मेहनतकश लोगों का आह्वान करते हैं कि 'अच्छे दिनों' के भरम से बाहर निकलो और आने वाले कठिन दिनों के संघर्षों के लिए खुद को तैयार करें।

क्या आपने ये बिगुल पुस्तिकाएँ पढ़ी हैं?

चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही
भारतीय पूँजीवादी जनतन्त्र की एक नंगी और गन्दी तस्वीर
रु. 5.00

नवउदारवादी अर्थनीति के 18 वर्ष – भारत की तरक्की के दावों के ढोल की पोल
समृद्धि के तलघर में नर्क का अँधेरा
रु. 5.00

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?
– अभिनव
रु. 20.00

धागों में उलझी ज़िन्दगियाँ

उद्योग नगर, गुड़गाँव में कपड़ा उद्योग के मज़दूरों के बीच हादसों और असन्तोष की दास्तान

(पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (पीयूडीआर) और पर्सपेक्टिव्स द्वारा जारी रिपोर्ट का एक भाग)

एक दिन में

हरियाणा का औद्योगिक परिसर जो कि उद्योग विहार के नाम से जाना जाता है, कापसहेड़ा से दिल्ली-हरियाणा बॉर्डर पार करते ही शुरू हो जाता है। इस इलाके में ज़्यादातर कपड़ा फैक्ट्रियाँ ही हैं। इसके अलावा यहाँ कंस्ट्रक्शन और गाड़ियों के पुर्ज़े बनाने वाली फैक्ट्रियाँ भी हैं। उद्योग विहार की स्थापना 1990 के दशक में निर्यात के लिए एक जगह पर कपड़ा बनाने के लिए हुई थी। उस समय दिल्ली से मैन्युफैक्चरिंग इकाइयों को टैक्स में भारी छूट देकर अनिवार्य रूप से हटने का आदेश दिया गया था। दिल्ली से इन इकाइओं को उद्योग विहार में पुनर्स्थापित किया गया था। आज फ़िर से इन्हें मानेसर या रेवाड़ी में पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। आज यह इलाका देश के चंद फैक्ट्री आधारित कपड़ा उद्योगों में से एक है। यह इलाका और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यहाँ निर्यात के लिए कपड़ा बनाया जाता है। हर सुबह मज़दूरों का एक सैलाब कापसहेड़ा से उद्योग विहार की ओर काम के लिए बढ़ता हुआ दिखता है। ज़्यादातर मज़दूर कापसहेड़ा में ही रहते हैं। यहाँ की फैक्ट्रियों में काम कर रहे अधिकतर मज़दूर उत्तर प्रदेश या बिहार से हैं। इनमें कई मुसलमान हैं और उत्तर प्रदेश के अलग-अलग जिलों से जुलाहा समुदाय के हैं।

इस उद्योग में जुड़े ज़्यादातर (95 से 99 प्रतिशत) मज़दूरों को ठेकेदारों के ज़रिये काम मिलता है, न कि सीधा कंपनियों से। यहाँ टाइम रेट यानी मासिक (और कभी-कभी दैनिक) और पीस रेट (जहाँ उन्हें प्रति यूनिट के हिसाब से पैसा मिलता है) पर काम मिलता है। एक समय था जब बहुत सारे 'फुल पीस टेलर' हुआ करते थे। यानी कि पूरा कपड़ा वही तैयार करते थे, इसलिए यह ज़रूरी था कि वे कुशल कारीगर हों। लेकिन कम से कम 1990 के दशक से यह उद्योग 'चेन सिस्टम' या असेम्बली लाइन प्रणाली के अनुसार काम कर रहा है। इसमें बहुत सारे मज़दूर लाइन से बैठते हैं और बारी-बारी एक ही कपड़े के अलग-अलग हिस्से सिलते हैं - जैसे कॉलर, बाजू, इत्यादि। चेन सिस्टम में पहले की तरह कुशल कारीगरों की ज़रूरत नहीं पड़ती। इसके कारण अब मज़दूरों से कम पैसे में काम करवाया जा सकता है।

एक आम कपड़ा फैक्ट्री में कई विभाग होते हैं। जैसे कि सैंपलिंग डिपार्टमेंट (जो विश्व स्तर पर खरीद करने वाली कम्पनी की स्वीकृति के लिए सैंपल बनाता है), क्वालिटी चैकिंग डिपार्टमेंट, कटिंग विभाग (जहाँ कपड़ा कटता है), प्रोडक्शन डिपार्टमेंट (जहाँ कपड़ों की थोक में सिलाई होती है), तथा फिनिशिंग डिपार्टमेंट (जहाँ धागे काटने, तह लगाने, इस्त्री और पैकिंग करने का काम होता है) (फ्लोचार्ट देखें)। हर विभाग में मज़दूरों के कई स्तर हैं। प्रबंधकों, विक्रेताओं और डिज़ाइनरों को छोड़ कर, बाकी सब मज़दूरों में से सबसे अधिक तनख्वाह या तो सुपरवाइज़र को मिलती है या फिर मास्टर टेलर को।

सुपरवाइज़रों को प्रति माह 15 से 25 हज़ार रुपये के बीच तनख्वाह मिलती है। इसके अलावा अधिक उत्पादन के लिए इंसेंटिव भी दिया जाता है। इसलिए, सुपरवाइज़र हर वक़्त मज़दूरों को तेज़ी से काम करने के लिए मजबूर करते रहते हैं। उद्योग विहार क्षेत्र में सभी सुपरवाइज़र पुरुष हैं और वे महिला मज़दूरों पर धौंस जमाते रहते हैं। सुपरवाइज़र मज़दूरों में से छांट कर बनाए जाते हैं, लेकिन वह कब तक इस दर्ज़े को बरकरार रख पाता है यह बहुत हद तक मालिक के साथ उसके रिश्ते पर निर्भर करता है। कुछ ऐसे उदाहरण भी टीम के सामने आये, जहाँ कुछ मज़दूरों पर सुपरवाइज़री का अतिरिक्त भार यह आश्वासन देकर डाल दिया गया कि भविष्य में तरक्की होगी, लेकिन उससे पहले ही उन्हें नौकरी से निकाल-बाहर कर दिया गया।

उद्योग विहार में कुल मज़दूरों में से 10 प्रतिशत बतौर 'सैम्पलर' काम करते हैं। ये लोग पहले सैंपल बनाते हैं जिसके आधार पर फ़िर थोक में कपड़े बनाए जाते हैं। लेकिन ज़्यादातर मज़दूर बतौर टेलर या हेल्पर काम करते हैं। आमतौर पर ज़्यादातर लोग हेल्पर की तरह काम करना शुरू करते हैं और फ़िर तरक्की होने पर टेलर बन जाते हैं। पहले एक हेल्पर को काम पर प्रशिक्षण दे दिया जाता था पर अब यह चलन बंद हो गया है इसलिए आजकल ज़्यादातर लोग इस इलाके में खुले अनगिनत प्रशिक्षण केन्द्रों में पहले एक या दो महीने का प्रशिक्षण लेते हैं।

सैम्पलिंग विभाग एक ऐसा विभाग है जिसको अनुभवी टेलरों की ज़रूरत पड़ती है। ऐसा इसलिए क्योंकि यहाँ बनाए गए सैंपल, ब्राण्ड वाली बड़ी कंपनी को स्वीकृति के लिए भेजे जाते हैं और इसी के आधार पर फ़िर आगे थोक में उत्पादन होता है। सैंपलिंग विभाग के टेलर या 'सैम्पलर' पूरी फैक्ट्री के टेलरों से बेहतर माने जाते हैं क्योंकि इन्हें मूल वेतन के अलावा अन्य भत्ते भी मिलते हैं। एक सैम्पलिंग टेलर का मूल वेतन प्रति माह 6,200 रुपये है द्ध2015 में हुई आखिरी बढ़त के बादद्ध। सभी भत्ते, जैसे मकान का किराया, यात्र, और महंगाई भत्ता जोड़कर मासिक वेतन लगभग 8,800 रुपये बन जाता है। ध्यान देना ज़रूरी है कि महंगाई भत्ता नहीं दिया जाता है । सैंपलिंग विभाग में उच्च दर्ज़े के टेलर भी होते हैं - जैसे मास्टर टेलर, कटिंग टेलर और पैटर्न टेलर, जिन्हें 20,000 से 36,000 रुपये के बीच में वेतन मिलता हैं। दूसरी तरफ प्रोडक्शन विभाग के टेलरों को प्रति माह केवल 6,500 रुपये मिलते हैं। इसके अलावा कोई अन्य भत्ता नहीं मिलता (तालिका 2 देखें)। इस थोड़ी सी तनख्वाह में से भी किसी न किसी कारण से कटौती की जा सकती है। हमारी टीम को बताया गया कि काम पर पहुँचने में दस मिनट की देरी होने पर एक घंटे की तनख्वाह भी कट सकती है।

मज़दूरों के वेतन को अगर गौर से देखें तो हमें उनके काम और रहने की परिस्थितियों का अंदाज़ा हो जाएगा। मासिक वेतन दिन में 8 घंटे के काम के हिसाब से दिए जाते हैं। कायदे से यह समय 9 से 5 या 5.30 बजे तक होता है, जिसमें आधे घंटे का लंच-ब्रेक होता है। मैनेजमेंट के अनुसार मज़दूरों को दो 15-15 मिनट के चाय-ब्रेक भी दिए जाते हैं। लेकिन मज़दूरों का कहना है कि दूसरा चाय-ब्रेक, ओवरटाइम शि"ट शुरू होने से पहले दिया जाता है। तालिका 3 को साथ रखकर देखें तो समझा जा सकता है कि मज़दूरों के वेतन में प्रति वर्ष हुई बढ़त, बाज़ार में बढ़ती कीमतों की तुलना में पर्याप्त नहीं है। इतना वेतन आम मध्यमवर्गीय जीवन के लिए कहीं नहीं है। हालांकि रुपयों के हिसाब से वेतन में बढ़ोतरी तो हुई है, लेकिन असल में मौजूदा वेतन से मज़दूर के लिए अपने और अपने परिवार का पालन-पोषण ठीक से कर पाना संभव नहीं है। रेखाचित्र से साफ़ पता चलता है कि अगर महंगाई या मुद्रास्फीति को मद्देनज़र रखकर देखा जाए तो असल में मूल वेतन में इतने सालों में गिरावट ही हुई है, यानी कि वेतन महंगाई के अनुपात में नहीं बढ़ा है। एक सैम्पलिंग टेलर को मकान के किराये और यात्र के लिए जो भत्ता मिलता है, उससे कुछ मदद हो जाती है (हालांकि ये भत्ते भी पर्याप्त नहीं हैं), लेकिन ज़्यादातर मज़दूर जो कि अन्य विभागों में काम करते हैं, उन्हें तो मूल वेतन के अलावा कुछ भी नहीं मिलता। सैंपलिंग टेलर की वेतन की रसीद को देखकर पता चलता है कि उन्हें तो महंगाई भत्ता भी नहीं दिया जाता है (देखें रेखाचित्र-1)। इसका मतलब सभी मज़दूर अपने वेतन से अब पहले की तुलना में कम खरीददारी कर पाते हैं। यही कारण है कि सभी मज़दूरों ने अपनी बचत में हुई गिरावट के बारे में बताया। कई मज़दूर अब पहले की मुक़ाबले में कम पैसा भेज पा रहे हैं।

इतनी कम तनख्वाह पर ओवरटाइम करना तो इस उद्योग में आम बात हो गई है। हर रोज़ 3 से 4 घंटे ओवरटाइम करने के बाद (रविवार को भी), मज़दूर महीने में 10 हज़ार रुपये कमा पाते हैं। कुछ मज़दूरों के अनुसार वे हर हफ्ते लगभग 100 घंटे ओवरटाइम करते हैं (कानून के अनुसार हर तीन महीने में सिर्फ 50 घंटे तक ओवरटाइम की अनुमति है)। उत्पादन के चरम समय पर रात को 2 बजे तक काम करना आम बात है। मज़दूरों को अपनी कमाई में इज़ाफ़ा करने के लिए ख़ुद भी ओवरटाइम करने की ज़रूरत महसूस होती है। कभी-कभी ऐसी परिस्थिति भी होती है कि अगर मालिक के कहने पर भी मज़दूर ओवरटाइम न करे तो उसे काम से हाथ धोना पड़ सकता है। कानून के अनुसार ओवरटाइम के लिए दोहरे रेट पर मज़दूरी मिलनी चाहिए, लेकिन इस इलाके में ऐसा बहुत कम फैक्ट्रियों में होता है। सिंगल रेट पर ओवरटाइम मज़दूरी देना अब यहाँ का कायदा बन चुका है।

कई मज़दूर मासिक वेतन के अलावा पीस रेट सिस्टम पर भी काम करते हैं। इस सिस्टम में मज़दूर को पीस के अनुसार तनख्वाह मिलती है न कि समय के अनुसार। एक पूरी कमीज़ के पीस रेट में हुई बढ़त से पता चलता है कि यह बढ़त कितनी कम है। पिछले 14 सालों में पीस रेट ज़्यादा नहीं बढ़े हैं। सन 2000 में, 14 या 15 रुपये प्रति शर्ट से आज ये

(पेज 15 पर जारी)

तालिका 2 : उद्योग विहार की कपड़ा फैक्ट्रियों में कुल मासिक वेतन (ओवरटाइम मिलाकर)
(जानकारी एक मज़दूर के हवाले से)

विभाग	पद	मासिक आय (रुपए)
सैम्पलिंग	हैल्पर	6500
	टेलर	9500–10500
	कटिंग मास्टर	15000
	पैटर्न मास्टर	35 – 46000
कटिंग	हैल्पर	6500
	कटिंग मास्टर	15000
	मास्टर टेलर (कटिंग मास्टरों में से एक)	15000
प्रोडक्शन	टेलर	250–270 प्रतिदिन
	सुपरवाइज़र	15000
फिनिशिंग	हैल्पर	6500
	जनरल चेकर	7500–8000
	मेज़रमेंट चेकर	7500–8000
	फाइनल चेकर	7500–8000
	सुपरवाइज़र या फिनिशिंग इन्चार्ज	15000

तालिका 3 : एक सैंपलिंग टेलर का मूल वेतन और खरीदने की क्षमता (क्रय शक्ति) (2007–2015)

वर्ष	मूल वेतन (मासिक) (रुपये)	औद्योगिक मज़दूरों के लिए कीमतों का सूचकांक (2007=10.0)	2007 की कीमतों के अनुसार मूल वेतन की खरीदने की क्षमता
2007	3900	100.00	3900
2008	3976	108.09	3678
2009	4304	119.85	3591
2010	4739	134.27	3529
2011	5031	146.16	3442
2012	5400 (लगभग)	159.77	3380
2013	5600 (लगभग)	177.22	3160
2014	6030	188.47	3199
2015	6200		

स्रोत – 1. एक सैम्पलिंग टेलर की तनख्वाह की रसीदें
2. लेबर ब्यूरो स्टेटिस्टिक्स

(पेज 14 से आगे)

केवल 20 से 25 रुपये ही हुए हैं और कुछ जगहों पर 30 से 35 रुपये। आज पर-पीस का मतलब पूरी कमीज़ या कपड़ा नहीं, कमीज़ का एक हिस्सा माना जाता है - जैसे कॉलर, बाजू, इत्यादि। तनख्वाह भी कितने कॉलर या बाजू सिले, उसके अनुसार मिलती है। पीस रेट सिस्टम मज़दूरों को बहुत लम्बे समय तक काम करने के लिए मजबूर करता है, ताकि वे ज़्यादा से ज़्यादा पीस बनाकर दिन में ज़्यादा कमा सकें। पीस रेट मज़दूरों में कुछ महिलाएं भी हैं जो घर से ही कई किस्म के महीन काम करती हैं, जैसे बटन या सितारे लगाना।

पंजीकृत फैक्ट्रियों में काम करने के अलावा कई मज़दूर 'फैब्रिकेटर यूनिट्स' में भी काम करते हैं। ये इकाइयाँ सीधे विश्व स्तर की खरीददार कम्पनियों से संपर्क नहीं करती हैं। आमतौर पर इनको पंजीकृत फैक्ट्रियों से काम ठेके पर मिलता है। फैब्रिकेटर यूनिट्स, टैक्स बचाने के लिए ज़्यादातर गैरकानूनी तौर पर काम करती हैं और बच्चों से भी काम करवाती हैं।

आमतौर पर देश के कपड़ा उद्योग में काम करने वालों में महिलाओं का अनुपात ज़्यादा होता है पर दिल्ली-एन.सी.आर. कपड़ा उद्योग इस मामले में एक अपवाद है। परन्तु अब महिला मज़दूरों की संख्या यहाँ भी बढ़ रही है। आमतौर पर महिलाएँ 'फिनिशिंग' विभाग में काम करती हैं, जहाँ वे धागे काटने, बटन लगाने, कपड़े तह करने या पैक करने का काम करती हैं। इस तरह का काम 'हल्का' माना जाता है। इसलिए इन्हें कम तनख्वाह मिलती है। हालांकि ऐसा नहीं है कि पुरुषों और महिलाओं को समान काम के लिए समान तनख्वाह नहीं मिलती। परन्तु पुरुष-प्रधान समाज की इस सोच के चलते कि महिलाएँ हल्का काम ही कर सकती हैं या महिलाओं की तनख्वाह घर की कुल तनख्वाह का मुख्य भाग नहीं होता, महिलाओं को अक्सर कम तनख्वाह वाला काम दिया जाता है। लेकिन जिस काम को 'हल्का' कहा जाता है वह कफी कठिन और जटिल होता है और जिसे लगातार झुककर करना पड़ता है, जिसके कारण महिलाओं के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

केवल असल वेतन में गिरावट मज़दूरों में असंतुष्टि का कारण नहीं है। काम की तीव्रता भी लगातार बढ़ रही है। उत्पादन के टारगेट बेहद दुष्कर हो गए हैं। इसका पता इस बात से चलता है कि जब 2014 में ओरिएंट क्राफ्ट फैक्टरी में एक मज़दूर अपनी ही सीट पर बेहोश हो गया, तब बाक़ी मज़दूरों को तुरंत इस बात का पता तक नहीं चल सका। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि काम में व्यस्त मज़दूरों के पास अपना सिर ऊपर उठाने तक का समय नहीं होता। एक टीम की संयुक्त जाँच रिपोर्ट के अनुसार, ''करीब 3-4 साल पहले, ओरिएंट क्राफ्ट ने हर एक टेलर के निरीक्षण के लिए स्टॉपवाच का प्रयोग शुरू किया था। इससे हर मज़दूर द्वारा एक पीस सिलने में लगे समय का हिसाब लग जाता था। इस प्रक्रिया को और आगे बढ़ाते हुए 1-2 साल पहले चुम्बकीय कार्ड रीडर को प्रयोग में लाया गया। अब कपड़े के हर बण्डल के साथ एक कार्ड रीडर आता है। हर टेलर को बण्डल पर काम शुरू करने से पहले और अंत में कार्ड रीडिंग मशीन पर कार्ड पंच करना पड़ता है। इससे यह पता चल जाता है कि मज़दूर ने हर काम कितने सेकंड में किया और प्रति दिन कितने पीस पूरे किये। इन मशीनों के लगने के बाद से काम की तीव्रता और बढ़ गई है। एक बण्डल में आमतौर पर 10 से 15 कपड़े होते हैं और एक मज़दूर से उम्मीद की जाती है कि वह हर घंटे में 5 से 10 बण्डल पूरे कर दे।''

काम की गति बढ़ाने के लिए एक अन्य तरीका भी अपनाया जाता है। इसमें एक पीस रेट मज़दूर और टाइम रेट मज़दूर को एक ही असेम्बली लाइन में बिठा दिया जाता है। इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि पीस रेट मज़दूर खुद ही दूसरे मज़दूरों पर जल्दी काम करने का दबाव डाले ताकि उसकी खुद की दैनिक आमदनी भी बढ़े। जाँच टीम को एक स्थानीय कार्यकर्ता ने बताया कि काम की गति आज तीन गुना बढ़ गई है।

मौजूदा तनख्वाह से बाज़ार में खरीदारी कर पाने की घटती क्षमता और काम की बढ़ती तीव्रता दोनों मिलकर मज़दूरों में हताशा और असंतुष्टि पैदा कर रही हैं। आज मज़दूरों की बेचैनी इतनी बढ़ गई है कि कोई भी हादसा होने पर वे गुस्से में सड़कों पर उतर आते हैं। हादसे भी आए दिन होने लगे हैं, जैसा कि पहले दी गई सूची से पता चलता है (देखें तालिका 1)। कठिन काम के अलावा एक अन्य चीज़ जो हादसों को बढ़ावा दे रही है वह यह है की सुरक्षा प्रावधानों के होने के बावजूद उनका प्रयोग मुश्किल से ही किया जाता है। उदाहरण के लिए, नीडल गार्ड जैसे उपकरण उपलब्ध होने के बावजूद इनका प्रयोग करने से रोका जाता है, क्योंकि ये काम की गति को धीमा करते हैं और उत्पादन के टारगेट पूरे करने में बाधा डालते हैं। मज़दूर भी इन उपकरणों का प्रयोग करने से बचते हैं क्योंकि इनसे उनका काम धीमा हो जाता है। सुरक्षा प्रावधानों का प्रयोग केवल उस समय होता है जब अंतर्राष्ट्रीय खरीददार कम्पनियों से कोई निरीक्षण करने आता है।

दिन भर की मेहनत के बाद

अगर एक तरफ मज़दूरों को कठिन परिस्थितियों में काम करना पड़ता है, तो वहीं दूसरी तरफ उनके रहने की परिस्थितियाँ भी काफी खराब हैं। फैक्ट्रियों में दिन भर कमरतोड़ मेहनत करने के बाद, वे अपने दमघोंटू अधेरे कमरों पर लौटते हैं, जहाँ वे अपने परिवारजनों या साथी मज़दूरों के साथ रहते हैं। इन सीलन भरी इमारतों तक का रास्ता तंग गलियों से होकर गुज़रता है। इन गलियों के चारों तरफ गन्दी नालियाँ और कूड़े के ढेर देखे जा सकते हैं।

कापसहेड़ा में मज़दूरों के रहने के लिए दो तरह की व्यवस्थाएँ उपलब्ध हैं। एक में एक खुले परिसर में किनारों पर 10X8 फुट माप के लगभग 18 कमरे हैं। इस इलाके में ये सबसे सस्ते कमरे हैं, जिनका मासिक किराया लगभग 1,650 रुपये है। इसके अलावा हर महीने बिजली के लिए करीब 300-400 रुपये का खर्च पड़ता है। हर कमरे के बाहर एक बिजली का मीटर लगा है। इन सभी कमरों पर एस्बेस्टस की चादर वाली छत लगी है, जिससे गर्मियों में बेहद घुटन पैदा होती है। आम तौर पर पाँच से सात लोगों का एक परिवार एक कमरे में रहता है। इसी कमरे में एक स्टोव, गैस सिलिंडर, बर्तन, राशन, पानी से भरी बाल्टियाँ, कपड़े, एक छोटा पलंग या गद्दा, बच्चों के स्कूल के बस्ते, किताबें और एक सिलाई मशीन (जो वे नौकरी के अलावा, कपड़े सिलकर पैसा कमाने के लिए रखते हैं) भी रखी होती हैं। हर परिसर में तीन गुसलखाने और दो शौचालय हैं, जिन्हें सभी किराएदार बारी-बारी से इस्तेमाल करते हैं। गुसलखाने हर तीन

(पेज 12 पर जारी)

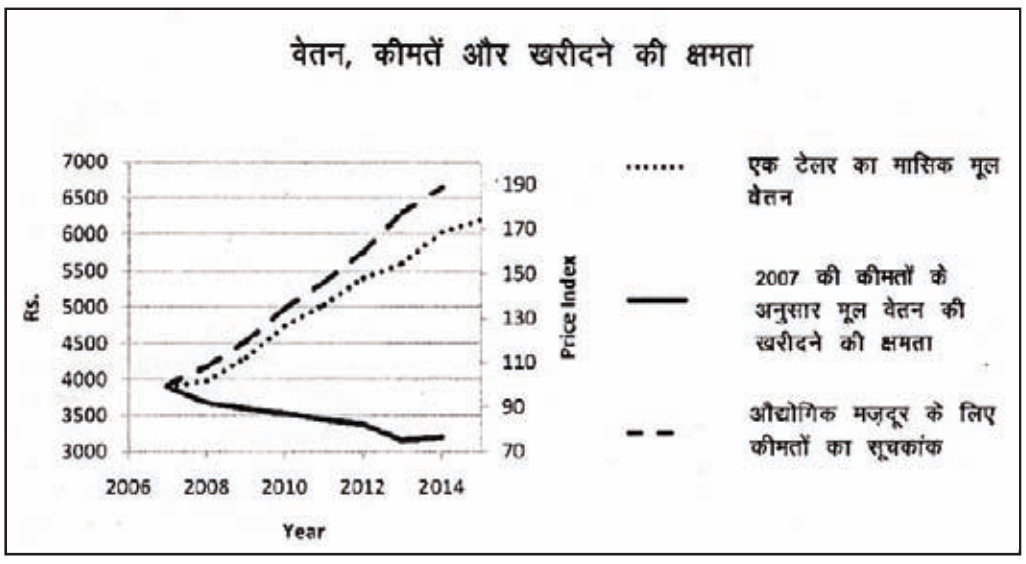

क्या मैं अब भी कसूरवार नहीं हूँ?

(बेर्निस जॉनसन रीगन ने 1985 में इस गीत के बोल लिखे और संगीतबद्ध किया था। स्वीट हनी इन द रॉक नाम के एक बैंड ने पहली बार इसे मंच पर गाया।)

जो पोशाक मैं पहनती हूँ
वह दुनिया भर के इंसानी हाथों की छुअन का एहसास लिये
मुझ तक पहुँचती है
पैंतीस फ़ीसदी सूत, पैंसठ फ़ीसदी पोलिएस्टर

इस सफ़र की शुरुआत मध्य अमरीका से होती है
अल साल्वाडोर के कपास के खेतों में
खून से सने एक प्रांत में कहीं
जहाँ ज़हरीली दवाओं का छिड़काव किए हुए पौधों से
कोई मज़दूर औरत दो डॉलर की खातिर
चिलचिलाती धूप में कपास चुन रही होती है

फिर हम अगले पड़ाव पर पहुँचते हैं
कारगिल
फसलों का कारोबार करने वाली
दुनिया की नामी-गिरामी कंपनी
कपास को पनामा नहर और ईस्टर्न सीबोर्ड से ढोते हुए
अमरीका में पहले कदम रखवाती है

साउथ कैरोलिना की बर्लिंगटन मिलों में
उस कपास की पहली मुलाक़ात
डूपोंट की न्यू जर्सी स्थित पेट्रोकेमिकल मिल्स से आए
पोलिएस्टर के रेशों से होती है
डूपोंट के इन रेशों की कहानी
दक्षिण अमरीका के एक देश
वेनेजुएला से शुरू हुई थी
जहाँ तेल निकालने के काम में लगे मज़दूर
महज़ छः डॉलर के मेहनताने पर
खतरों से खेलते हुए धरती के गर्भ से तेल निकालते हैं

फिर एक्सॉन नामक
दुनिया की सबसे बड़ी तेल कंपनी
त्रिनिदाद और टोबागो नाम के देश में
उस कच्चे तेल को पोलिएस्टर में लगने वाले पेट्रोलियम में ढालती है
अब एक बार फिर उसे डूपोंट के कारखानों के लिए
कैरेबियाई और अटलांटिक महासागरों की तरफ रवाना कर दिया जाता है
साउथ कैरोलिना की बर्लिंगटन मिल्स में
अल साल्वाडोर के खून से लथपथ खेतों में उपजे कपास से
मिलने के लिए

साउथ कैरोलिना में
बर्लिंगटन के कारखानों में कर्कश शोर गूंजने लगता है
मशीनें मीलों लम्बे कपड़े के थान उगलने लगती हैं
सीअर्स कंपनी का मालिक अब अपने ईनाम को लेकर
दोबारा कैरेबियाई समंदर का रुख करता है
इस बार उसकी मंजिल है हैती
गुलामी की ज़ंजीरों से आज़ाद होने के लिए छटपटाता एक देश!

उधर राजधानी
पोर्ट औ प्रिंस के महल से बहुत दूर
तीसरी दुनिया की औरतें
सीअर्स कंपनी के निर्देश पर
नए-नए डिज़ाइन और फैशन के कपड़े सीने के लिए
रोज़ाना तीन डक्कलर की दिहाड़ी के लालच में खटने लगती हैं

तैयारशुदा ब्लाउज़ अब आखिरी बार
तीसरी दुनिया को अलविदा कह प्लास्टिक में लिपट कर
मेरे जिस्म पर सजने के लिए समंदर में रवाना होता है

और तीसरी दुनिया की मेरी यह बहन
अपने जिस्म पर अँधेरे की चादर लपेटे
सूने आसमान में ना जाने क्या तकने लगती है

और मैं पहुँच जाती हूँ सीअर्स के शोरूम में
जहाँ मैं अपना ब्लाउज़ खरीदती हूँ
बीस परसेंट डिस्काउंट पर

क्या मैं अब भी यकीन से कह सकती हूँ कि मैं कसूरवार नहीं हूँ?

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

आख़िर आपके गुप्तांगों की तस्वीर और डीएनए मैपिंग क्यों चाहती है सरकार?

शासक वर्ग जनमानस में राज्य और कानून की पवित्रता के मिथक को सुनियोजित ढ़ंग से स्थापित करता है। जनता को यह सोचने की आदत डाली जाती है कि हर कानूनसम्मत कार्यवाई हमेशा ही न्यायपूर्ण होती है। इस तरह राज्य और कानून, जो वास्तव में शोषक वर्ग द्वारा शोषितों को बलपूर्वक नियंत्रित करने का औज़ार होता है, को आलोचना और तर्क से परे घोषित कर दिया जाता है। जनता यह नहीं समझ पाती कि कानून विभिन्न वर्गों और सामाजिक संस्तरों के बीच कायम वास्तविक संबंधों का प्रतिबिम्ब होते हैं और हमेशा ही शोषकों के हितों के अनुरूप ढ़ाले जाते हैं। मज़ेदार बात यह है कि यह सारा खेल लोकतंत्र और जनता तथा देश हित के नाम पर खेला जाता है। बहुत बार तो ऐसा भी होता है कि संसदीय राजनीति की जूतम-पैजार के शोर में महत्वपूर्ण विधेयकों के बारे में जनता को पता तक नहीं चल पाता है। इसका हालिया उदाहरण संसद के मानसून सत्र में प्रस्तुत डी एन ए प्रोफाइलिंग विधेयक है।

ज़्यादातर भारतीय इस बात से अनजान हैं कि सरकार डी एन ए प्रोफाइलिंग विधेयक 2015 लेकर आ चुकी है। इस विधेयक को पास कराने की जल्दबाज़ मानसिकता को इसी से समझा जा सकता है कि सरकार ने इस महत्वपूर्ण विधेयक पर जनता की प्रतिक्रिया के लिए पंद्रह दिनों का समय देना भी उचित नहीं समझा। इस किस्म के विधेयक को लाने का विचार सबसे पहले वर्ष 2003 में अटल बिहारी की सरकार के समय रखा गया था। वर्ष 2007 में इसका पहला मसविदा बनकर तैयार हुआ। इस विधेयक के मसविदे में ज़िन्दा लोगों के शरीर से जाँच के लिए नमूने लेने का प्रावधान है। इसमें गुप्तांग, कुल्हे, स्तन आदि शारीरिक अंग शामिल हैं। नमूने लेने के साथ-साथ शरीर के इन हिस्सों की फोटोग्राफ़ी और वीडियो रिकार्डिंग करने का भी प्रावधान है। अपने वर्तमान स्वरूप में यह विधेयक न सिर्फ जनता की निजता के अधिकार पर हमला करता है बल्कि इसके कई अन्य प्रावधान इसे एक अनियंत्रित निरंकुश शक्ति प्रदान करते हैं। इस विधेयक की समीक्षा के लिए बनी उच्च स्तरीय विशेषज्ञ कमेटी के दो सदस्यों उषा रामनाथन (कानून विशेषज्ञ) और एक वैज्ञानिक की महत्वपूर्ण आपत्तियों पर सरकार द्वारा षड्यन्त्रकारी चुप्पी साध ली गई है। विशेषज्ञ कमेटी के इन दो सदस्यों ने विधेयक पर आपत्तियाँ दर्ज करते हुए 34 बिन्दुओं का असहमति नोट लिखा था लेकिन हैरानी की बात है कि उनकी इन लिखित आपत्तियों को न सिर्फ मसौदे से हटा दिया गया बल्कि उसकी कहीं पर चर्चा भी नहीं की गई। इससे साफ़ हो जाता है कि सरकार हर कीमत पर इस काले कानून को अपने वर्तमान रूप में पारित करने के लिए कमर कस चुकी है। यह कानून फौजदारी और दीवानी दोनों मामलों पर लागू होगा। इस कानून के तहत डी एन ए प्रोफाइलिंग बोर्ड का गठन किया जाएगा जिसे असीमित शक्तियाँ दी गई हैं और वह सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप से भी लगभग अछूता रहेगा। यह निकाय जनता की डी एन ए संबंधी सूचनाओं को किसी के भी साथ साझा करने के लिए आज़ाद होगा। चूँकि विधेयक फॉरेनसिक जाँच के बजाय डी एन ए जाँच करने की बात करता है इसलिए इसके दुरुपयोग की सम्भावनाएँ बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसका अंदाज़ा इसी बात से लग जाता है कि देशी-विदेशी कम्पनियाँ जाँच के लिए इकट्ठा किये गए नमूनों को जेनेटिक प्रयोगों के लिए भी इस्तेमाल कर सकती हैं।

सरकार का दावा है कि कानून बन जाने के बाद मुकदमों का निपटारा तेज़ी के साथ हो सकेगा। हम सब जानते हैं कि भारतीय अदालतों में देरी की वजहें पुलिस और न्यायिक प्रणाली में मौजूद हैं। मुकदमों में देरी सबूतों के अभाव की वजह से कभी भी नहीं होती है। इसके अलावा एक तर्क यह भी दिया जा रहा है कि डी एन ए जाँच लागू हो जाने के बाद कोई भी अपराधी बच नहीं पायेगा। जिन मुल्कों में यह पद्धति लागू है वहाँ के विशेषज्ञों की माने तो यह एक सफेद झूठ है। सच्चाई यह है कि घटनास्थल पर डी एन ए के सैम्पल इकट्ठा करने से लेकर जाँच की प्रक्रिया और नतीजों के विश्लेषण तक गलतियाँ होने की न सिर्फ कई सम्भावनाएँ मौजूद रहती है बल्कि वास्तव में गलतियाँ होती भी हैं। इसके भी सैंकड़ों उदाहरण मौजूद हैं जहाँ जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति का डी एन ए घटनास्थल पर रोप दिया गया हो। दूसरा इस कानून के दमनकारी होने का नतीजा इससे भी लगाया जा सकता है कि इसकी ज़द में केवल अपराधी ही नहीं आयेंगें बल्कि वे सारे लोग भी आएंगें जिनका घटना से किसी भी रूप में संबंध जोड़ा जा सकता हो। ब्रिटेन में तो एक ऐसा मामला दर्ज है जहाँ एक बुजुर्ग महिला को इसलिए अपनी डी एन ए प्रोफाइलिंग करवानी पड़ी चूँकि उसने अपने बागीचे में आकर गिरी हुई पड़ोसियों की फुटबाल देने से मना कर दिया था।

इस दमनकारी विधेयक के पक्ष में सरकार के लचर तर्क बतातें हैं कि मामला जनता को इंसाफ़ दिलाने का नहीं बल्कि कुछ और ही है। सरकार के असली इरादों को समझने के लिए जरूरी है कि हम राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों के संदर्भ में इसे समझने का प्रयास करें। उम्मीद है कि अमेरिकी नागरिक एडवर्ड स्नोडेन के मामले को पाठक अभी भूले नहीं होंगे। यह बात जगज़ाहिर हो चुकी है कि अमेरिकी राज्यसत्ता अपने हर एक नागरिक की जासूसी करती है और यह बात दुनिया की करीब-करीब सभी सरकारों पर लागू होती है। 1970 के दशक से तीख़ा होता विश्व पूँजीवाद का ढाँचागत संकट कमोबेश हर राज्य व्यवस्था को संभावित जन-असंतोषों के विस्फोट से भयाक्रांत किये हुए है। एक बात साफ़ है कि जनता पूँजीवादी शासन व्यवस्था की मार को चुपचाप नहीं सहेगी, वह इस व्यवस्था का विकल्प खड़ा करने के लिए आगे आएगी। इस ख़तरे के मद्देनज़र राज्य स्वयं को जनता के विरुद्ध हर किस्म की शक्ति से लैस कर लेना चाहता है। वह चाहता है कि उसके पास अपने नागरिकों के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा सूचनाएँ हों ताकि क्रांतिकारी बदलाव की घड़ियों में इन सूचनाओं का इस्तेमाल अपने विरोधियों यानी संघर्षरत जनता के सफ़ाये के लिये किया जा सके। भारतीय शासन सत्ता भी इसका अपवाद नहीं है। कम ही लोगों को पता है कि भारत सरकार की सी एम एस (सेन्ट्रल मॉनिटरिंग सिस्टम) योजना नागरिकों की जासूसी करने के मामले में अमेरिका को पछाड़ चुकी है। भारत सरकार ने तो कई राज्यों में पुस्तक और पत्र-पत्रिकाओं के विक्रेताओं तक को पाठकों की जासूसी करने के निर्देश दे रखे हैं। आधार कार्ड के ज़रिये अँगूठे के निशान और आँखों की पुतलियों का रिकार्ड भारत सरकार पहले ही जमा कर चुकी है, रही सही कसर डी एन ए प्रोफाइलिंग और गुप्तांगों की तस्वीर लेकर पूरी करने की तैयारी है।

– तपिश

फॉक्सकॉन का महाराष्ट्र में पूँजी निवेश : स्वदेशी का राग जपने वाले पाखण्डी राष्ट्रवादियों का असली चेहरा

मई, 2014 सत्ता में आने के बाद नरेंद्र मोदी की सरकार ने 'मेक इन इंडिया' का नारा देकर अपने पूँजीपति आकाओं को खुश करने की दिशा में पहला कदम उठाया। 'मेक इन इंडिया' के नाम पर अंतरराष्ट्रीय पूँजी को और खुले तौर पर देश में निवेश को आकर्षित करने के लिए पूँजीपतियों के इस प्रधान सेवक ने पिछले एक साल में लगातार कई देशों की यात्राएँ की हैं। जिस तरीके के नरेंद्र मोदी लगातार विदेशों की यात्राएँ कर रहे हैं उसे देखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि यह सरकार विदेशी पूँजी को देश में लाने के लिए पिछली सभी सरकारों ने जो 'लचीलापन' दिखाया उसे भी पीछे छोड़ देगी। यह गौर करने वाली बात है कि विपक्ष में रहते समय भाजपा ने रक्षा, बीमा क्षेत्र में विदेशी निवेश के विरोध में जमकर नौटंकी की थी। पर 'अच्छे दिन' का जुमला उछालकर सत्ता में पहुँची भाजपा ने अपने इस विरोध की नौटंकी को भूलकर रक्षा और बीमा क्षेत्र में विदेशी पूँजी के लिए दरवाजे खोल दिये हैं। और तो और, अब तक निजी पूँजी से अछूती रही भारतीय रेल सेवा भी निजी हाथों में सौंपने के लिए ज़रूरी शुरुआती कदम उठाये जा रहे हैं। संसदीय व्यवस्था के चरित्र और वित्तीय पूँजी के भूमंडलीकरण के आज के दौर को देखते हुए कहना गलत नहीं होगा कि सरकार किसी की भी बने, पर कोई भी पूँजीपरस्त सरकार विदेशी पूँजी निवेश को रोक नहीं सकती।

देश के संसाधनो को पूँजीपतियों के हवाले करने और सस्ते दामों पर श्रम का शोषण करने लिए जो जुमला इस बार उछाला गया है उसी का नाम है - मेक इन इंडिया। 25 सितम्बर को 'मेक इन इंडिया' की औपचारिक शुरुआत करते हुए मोदी ने कहा था कि वे बड़े आहत होते हैं जब देखते हैं कि पूँजीपतियों को बहुत सारी 'दिक्कतों' के चलते देश छोड़ना पड़ता है और पूँजीपति जिन दिक्कतों का सामना करते है उन दिक्कतों को वो कम करना चाहते हैं। गौर करनेवाली बात यह है कि इस कार्यक्रम के शुरू होने से ठीक पहले केंद्र सरकार की वाणिज्य मंत्री निर्मला सीतारामन ने प्रेस कॉन्फ्रेंस लेकर कहा था कि 'मेक इन इंडिया' के शुरुआती कदम के तौर पर उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में विदेशी पूँजी निवेश की मर्यादा को हटाया है, लाइसेंस की प्रक्रिया को सुलभ करते हुए उसे ऑनलाइन बनाया है। इन लाइसेंसों की वैधता का काल बढ़ाकर तीन साल कर दिया गया है और बहुत सारे नियम और प्रक्रियाएँ या तो रद्द कर दी हैं या फिर उन्हें 'सरल' बनाया गया है। ये समझने के लिए बहुत बुद्धिमान होने की ज़रूरत नहीं है कि लाइसेंस प्रक्रिया के नियम और प्रक्रियाएँ रद्द करने या फिर उन्हें अधिक 'सरल' बनाने का मतलब क्या होता है। इसका मतलब होता है पर्यावरण विषयक क्लियरेंस, जमीनों का बेरोकटोक अधिग्रहण और श्रम कानूनों में पूँजीपरस्त बदलाव!

नरेंद्र मोदी के 'मेक इन इंडिया' के आह्वान की प्रतिक्रिया स्वरूप स्पाइस ग्रुप, सैमसंग, हिताची, हुआवेई, पोस्को जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत में बड़े पैमाने पर पूँजी निवेश करने के लिए आगे आयी हैं। इस कड़ी में और बड़ा नाम तब जुड़ गया जब ताइवान स्थित की दुनिया की सबसे बड़ी इलेक्ट्रॉनिक उपकरण उत्पादक कंपनी 'फॉक्सकॉन' के चेयरमैन टेरी गोऊ ने महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री देवेन्द्र फडणवीस की उपस्थिति में यह ऐलान कर दिया कि फॉक्सकॉन महाराष्ट्र में 5 बिलियन अमेरिकी डॉलर का निवेश करने जा रहा है। साथ में उन्होंने ये भी कहा कि फॉक्सकॉन के महाराष्ट्र में आने से 50,000 नये रोज़गार पैदा होंगे। महाराष्ट्र सरकार ने भी तुरंत ऐलान कर दिया कि वह फॉक्सकॉन के लिए पुणे-मुंबई के बीच में 1500 एकड़ की ज़मीन मुहैया करवायेगी। यह 'मेक इन इंडिया' की घोषणा के बाद का सबसे बड़ा विदेशी पूँजी निवेश है। फॉक्सकॉन एप्पल, ब्लैकबेरी, शाओमी जैसे बड़ी मोबाइल कंपनियों के लिए इलेक्ट्रॉनिक उपकरण तैयार करती है। फॉक्सकॉन के दुनियाभर के कारख़ानों में करीब 12 लाख मज़दूर काम करते हैं। इसके चीन के शेनझेन स्थित कारख़ाने में ही 1,20,000 मज़दूर काम करते है। पर हमें निवेश और रोजगार के इन भरमाने वाले आँकड़ों को देखते वक्त ये भूलना नहीं चाहिए कि फॉक्सकॉन की चीन स्थित फैक्टरी में मज़दूरों से किन तरीकों से नारकीय परिस्थितियों में 12-14 घंटे काम निकलवाया

(पेज 10 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006